108

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित

कवितावली

(सरल भावार्थसहित)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीरचित

कवितावली

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अनुवादक—इन्द्रदेवनारायण

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

श्रीइन्द्रदेवनारायणजीद्वारा अनुवादित इस कवितावलीके अनुवादको संशोधन करनेमें श्रीयुत मुनिलालजी एवं सम्मान्य पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए०, शास्त्री, सम्पादक कल्याण-कल्पतरुने जो परिश्रम किया है, उसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।

प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

ॐ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

कवितावली

बालकाण्ड

रेफ आत्मचिन्मय अकल, परब्रह्म पररूप।
हरि-हर-अज-वन्दित-चरन, अगुण अनीह अनूप॥ १॥
बालकेलि दशरथ-अजिर, करत सो फिरत सभाय।
पदनखेन्दु तेहि ध्यान धरि, विरचत तिलक बनाय॥ २॥
अनिलसुवन पदपद्मरज, प्रेमसहित शिर धार।
इन्द्रदेव टीका रचत, कवितावली उदार॥ ३॥
बन्दौं श्रीतुलसीचरन-नख, अनूप दुतिमाल।
कवितावलि-टीका लसै कवितावलि-वरभाल॥ ४॥

बालरूपकी झाँकी

अवधेसके द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचनको ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से॥
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक-से।
सजनी ससिमें समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे॥

[एक सखी किसी दूसरी सखीसे कहती है—] मैं सबेरे अयोध्यापति महाराज दशरथके द्वारपर गयी थी। उसी समय महाराज पुत्रको गोदमें लिये बाहर आये। मैं तो उस सकल शोकहारी बालकको देखकर ठगी-सी रह गयी; उसे देखकर जो मोहित न हों, उन्हें धिक्कार है। उस बालकके अञ्जन-रञ्जित मनोहर नेत्र खञ्जन पक्षीके बच्चेके समान थे। हे सखि ! वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो चन्द्रमाके भीतर दो समान रूपवाले नवीन नीलकमल खिले हुए हों॥ १॥

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ॥
अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जगमें फलु कौन जिएँ॥

उस बालकके चरणोंमें घुँघरू, कर-कमलोंमें पहुँची और गलेमें मनोहर मणियोंकी माला शोभायमान थी। उसके नवीन श्याम शरीरपर पीला झँगुला झलकता था। महाराज उसे गोदमें लेकर पुलकित हो रहे थे। उसका मुख कमलके समान था, जिसके रूपमकरन्दका पान कर (देखनेवालोंके) नेत्ररूप भौंरे आनन्दमग्न हो जाते थे। श्रीगोसाईंजी कहते हैं—यदि मनमें ऐसा बालक न बसा तो संसारमें जीवित रहनेसे क्या लाभ है?॥ २॥

तनकी दुति स्याम सरोरुह लोचन कंजकी मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंगकी दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि-ज्यौं किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरैं॥

उनके शरीरकी आभा नील कमलके समान है तथा नेत्र कमलकी शोभाको हरते हैं। धूलिसे भरे होनेपर भी वे बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं और कामदेवकी महती छबिको भी दूर कर देते हैं। उनके नन्हे-नन्हे दाँत बिजलीकी चमकके समान चमकते हैं और वे किलक-किलककर मनोहर बाललीलाएँ करते हैं। अयोध्यापति महाराज दशरथके वे चारों बालक तुलसीदासके मनमन्दिरमें सदैव विहार करें॥ ३॥

बाललीला

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरैं॥

कभी चन्द्रमाको माँगनेका हठ करते हैं, कभी अपनी परछाहीं देखकर डरते हैं, कभी हाथसे ताली बजा-बजाकर नाचते हैं, जिससे सब माताओंके हृदय आनन्दसे भर जाते हैं। कभी रूठकर हठपूर्वक कुछ कहते (माँगते हैं) और जिस वस्तुके लिये अड़ते हैं, उसे लेकर ही मानते हैं। अयोध्यापति महाराज दशरथके वे चारों बालक तुलसीदासके मनमन्दिरमें सदैव विहार करें॥ ४॥

बर दंतकी पंगति कुंदकली अधराधर-पल्लव खोलनकी।
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलनकी॥

घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी॥

कुन्दकलीके समान उज्ज्वलवर्ण दन्तावली, अधरपुटोंका खोलना और अमूल्य मुक्तामालाओंकी छवि ऐसी जान पड़ती है मानो श्याम मेघके भीतर बिजली चमकती हो। मुखपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—लल्ला! मैं कुण्डलोंकी झलकसे सुशोभित तुम्हारे कपोलों और इन अमोल बोलोंपर अपने प्राण न्योछावर करता हूँ॥ ५॥

पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू-तट चौहट हाट हिएँ॥
तुलसी अस बालक-सों नहिं नेहु कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर स्वान समान कहौ जगमें फलु कौन जिएँ॥

उनके चरणकमलोंमें मनोहर जूतियाँ सुशोभित हैं, वे करकमलोंमें छोटा-सा धनुष-बाण लिये हुए हैं, बालकोंके साथ सरयूजीके किनारे, चौराहे और बाजारोंमें खेलते फिरते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि ऐसे बालकोंसे प्रेम न हुआ तो बताइये जप, योग अथवा समाधि करनेसे क्या लाभ है? वे लोग तो गधों, शूकरों और कुत्तोंके समान हैं, बताइये, संसारमें उनके जीनेका क्या फल है?॥ ६॥

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पबै॥

श्रीरघुनाथजी उनके सखा और सब भाई पवित्र सरयू नदीके किनारे-किनारे घूमते फिरते हैं। उनके हाथमें छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं, कमरमें तरकस कसा हुआ है और शरीरपर नूतन पीताम्बर सुशोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं श्रीशारदाकी मति उस समयकी सुन्दरताकी उपमा चौदहों भुवन, नवों खण्ड, तीनों लोक और इक्कीसों ब्रह्माण्डोंमें जब विचारपूर्वक खोजनेपर भी नहीं पा सकी, तब कुण्ठित हो गयी*॥ ७॥

* उस समय शोभाकी उपमा पानेके लिये शारदा दसों यामल-तन्त्र, चारों उपवेद, नवों

धनुर्यज्ञ

छोनीमेंके छोनीपति छाजै जिन्है छत्रछाया।
छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराजके।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु।
बरिबेकों बोले बैदेही बर काजके॥
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ।
बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाजके।
तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते।
बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराजके॥

जिनके ऊपर राजछत्रोंकी छाया शोभायमान है, ऐसे पृथ्वीभरके राजालोग झुंड-के-झुंड महाराज जनकके यहाँ आकर उनके स्थानमें छाये हुए हैं। वे बड़े बलवान्, प्रतापी और तेजस्वी हैं, उनके शरीर और वेष भी बड़े सुन्दर हैं और वे श्रीसीताजीको वरण करनेके शुभ कार्यसे बुलाये गये हैं। श्रेष्ठ वन्दीजन उनकी विरदावलीका बखान करते हैं, बाजेवाले बाजे बजाते हैं तथा उस राजसमाजके कोई-कोई वीर भी अपनी भुजाएँ ठोंकते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—इस समय जनकपुरके जितने नर-नारी हैं, वे सभी अवधकेसरी भगवान् रामका मुख बारम्बार देखते और मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं॥ ८॥

व्याकरण, वेदत्रयी और इक्कीसों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र फिरी, परंतु उन सबको देख और विचारकर भी उसकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी। अर्थात् उसे उस शोभाके योग्य कोई भी उपमा नहीं मिली।

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाकी प्रतिमें यों अर्थ है—

दस गुण माधुर्यके (रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, यौवन, सुगन्ध, सुवेश, स्वच्छता, उज्ज्वलता)।

चार गुण प्रतापके (ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, बल)।

ऐश्वर्यके नौ गुण (भाग्य,अदभ्रता,नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, वदान्यता)।

सहज या प्रकृतिके तीन गुण (सौम्यता, रमण, व्यापकता)।

यशके इक्कीस गुण (सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गम्भीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रता, उदारता, आर्जव, शरण्यत्व, सौहार्द, चातुर्य, प्रीतिपालकत्व, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निवर्हणता)।

सियकें स्वयंबर समाजु जहाँ राजनिको
राजनके राजा महाराजा जानै नाम को।
पवनु, पुरंदरु, कृसानु, भानु, धनदु-से,
गुनके निधान रूपधाम सोमु कामु को॥
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्हकें गुमानु सदा सालिम संग्रामको।
तहाँ दसरत्थकें समत्थ नाथ तुलसी के
चपरि चढ़ायौ चापु चंद्रमाललामको॥

सीताजीके स्वयंवरमें, जहाँ राजाओंका समाज जुड़ा हुआ था, बहुत-से राजराजेश्वर और सम्राट् थे, उनके नाम कौन जानता है ? वे वायु, इन्द्र, अग्नि, सूर्य और कुबेरके समान गुणके भण्डार और ऐसे रूपराशि थे कि उनके सामने चन्द्रमा तथा कामदेव भी क्या हैं ? उनमें बाणासुर और राक्षसराज रावण-जैसे शूरवीर भी थे, जिन्हें संग्रामभूमिमें सदा ही सकुशल रहनेका अभिमान था [अर्थात् जो संग्राममें सदा ही दृढ़रूपसे क्षतिरहित विजय लाभ करते थे] उसी राजसमाजमें तुलसीदासके समर्थ प्रभु दशरथनन्दन रामने चपलतासे चन्द्रमौलि भगवान् शंकरका धनुष चढ़ा दिया॥ ९॥

मयनमहनु पुरदहनु गहनु जानि
आनिकै सबैको सारु धनुष गढ़ायो है।
जनकसदसि जेते भले-भले भूमिपाल
किये बलहीन, बलु आपनो बढ़ायो है॥
कुलिस-कठोर कूर्मपीठतें कठिन अति
हठि न पिनाकु काहूँ चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो रामके सरोज-पानि परसत ही
टूट्यौ मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥

श्रीमहादेवजीने कामका दलन और त्रिपुरका नाश बहुत कठिन समझकर सब कठोर पदार्थोंको मँगाकर उनका साररूप यह धनुष बनवाया था। उसने जनकजीकी सभामें जितने बड़े-बड़े राजा आये थे, उन सभीको बलहीन कर अपना ही बल बढ़ा रखा। वज्रसे भी कठोर और कछुएकी पीठसे भी कड़े उस धनुषको कोई भी राजा बलपूर्वक फुर्तीसे नहीं चढ़ा सका। तुलसीदासजी

कहते हैं—किंतु वही धनुष भगवान् रामके करकमलका स्पर्श होते ही टूट गया, मानो महादेवजीका उसे बालेपन (आरम्भ) से यही पाठ पढ़ाया हुआ था॥ १०॥

डिगति उर्वि, अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र-सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुख्ख भर।
सुर-बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥

जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीका धनुष तोड़ा, उस समय उसका प्रचण्ड शब्द ब्रह्माण्डको पार कर गया और उसके आघातसे सारे पर्वत, समुद्र और तालाबोंके सहित अत्यन्त भारी पृथ्वी डगमगाने लगी, सर्प बहिरे हो गये, सम्पूर्ण चराचर एवं इन्द्रादि दिक्पालगण व्याकुल हो उठे, दिग्गज लड़खड़ाने लगे, रावण मुँहके बल गिरने लगा, देवताओंके विमान, चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें परस्पर टकराने लगे, महादेवजीसहित ब्रह्माजी चौंक पड़े और वाराह, कच्छप तथा शेषजी भी कलमला उठे॥ ११॥

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,
सखी कहै सखीसों तूँ प्रेमपय पालि, री!
बालक नृपालजूकें ख्याल ही पिनाकु तोर्‌यो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दापु दालि री॥
जनकको, सियाको, हमारो, तेरो, तुलसीको,
सबको भावतो ह्वैहै, मैं जो कह्यो कालि, री।
कौसिलाकी कोखिपर तोषि तन वारिये, री
राय दसरत्थकी बलैया लीजै आलि री॥

कोई सखी दूसरी सखीसे कहने लगी—अरी सखि ! रामचन्द्रजीके इस नयनसुखदायक मेघश्यामरूप शिशुका तू प्रेमरूपी दूधसे पालन कर। यहाँ एकत्रित हुए मण्डलेश्वरोंको जो अपने प्रतापका अभिमान था, उसे चूर्ण कर इस राजकुमारने संकल्पमात्रसे ही धनुष तोड़ डाला। मैंने जो तुझसे कल कहा था, अब महाराज जनकका, सीताका, हमारा, तेरा और तुलसीका—सभीका मनमाना होगा। अरी आली ! अब संतुष्ट होकर रानी कौसल्याकी कोखपर अपना शरीर

न्योछावर कर दो और महाराज दशरथकी भी बलैयाँ लो॥ १२॥

दूब दधि रोचनु कनक थार भरि भरि
आरति सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकीके
पहिराओ राघोजूको सखियाँ सिखावतीं॥
तुलसी मुदित मन जनकनगर-जन
झाँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानीं पावतीं।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड
चंदकी किरिन पीवैं पलकौं न लावतीं॥

सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुवर्णके थालोंमें दूब, दही और रोली भर-भरकर आरती सजा गाती हुई चलीं। श्रीजानकीजीके करकमल जयमाला लिये सुशोभित हो रहे हैं। उन्हें सखियाँ सिखाती हैं कि श्रीरामचन्द्रजीको जयमाला पहना दो। तुलसीदासजी कहते हैं—जनकपुरके सभी लोग मनमें प्रसन्न हैं। झरोखोंमें आकर झाँकती हुई रानियाँ भी बड़ी ही शोभा पा रही हैं, मानो अपने-अपने घोसलोंमें बैठी हुई मनोहर चकोरियाँ चन्द्रमाकी किरणोंका अनिमेष नेत्रोंसे पान कर रही हैं॥ १३॥

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभीं
बिमान चढ़ि गान कैके सुरनारि नाचहीं।
जयति जय तिहुँ पुर जयमाल राम उर
बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं॥
जनकको पनु जयो, सबको भावतो भयो
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
साँवरो किसोर गोरी सोभापर तृन तोरी
जोरी जियो जुग-जुग जुवती-जन जाचहीं॥

नगरमें मनोहर नगाड़े और आकाशमें दुन्दुभियाँ बज रही हैं। देवाङ्गनाएँ विमानोंपर चढ़ गा-गाकर नृत्य कर रही हैं। तीनों लोकोंमें जय-जयकार छाया हुआ है। भगवान् रामके गलेमें जयमाला सुशोभित है। देवतालोग भगवान्‌के सुन्दर रूपपर मुग्ध होकर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—महाराज जनककी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, सब लोगोंकी अभिलाषा पूरी हो गयी; अतः आनन्दके कारण उनके रोम-रोममें हर्ष भर गया है। युवतियाँ उस श्याम-सुन्दर

कुमार और गौरवर्णा कुमारीकी शोभापर तृण तोड़कर मनाती हैं कि यह जोड़ी युग-युग जीवित रहे॥ १४॥

भले भूप कहत भलें भदेस भूपनि सों
लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारिषी।
जगदंबा जानकी जगतपितु रामचंद्र,
जानि जियँ जोहौ जो न लागै मुँह कारिखी॥
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद,
बूझे हैं सुजान साधु नर-नारि पारिखी।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,
रामु-से न बर दुलही न सिय-सारिखी॥

अच्छे राजालोग नीच राजाओंको भली प्रकार समझाकर कहते हैं कि समाजको देखकर आर्योचित पवित्र ढंगसे बात कीजिये। श्रीजानकीजीको जगत्की माता और कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको जगत्के पिता जानकर मनमें ऐसे विचारकर देखो जिससे मुँहमें कालिमा न लगे। अनेकों विवाह देखे हैं, वेद-पुराण भी सुने और श्रेष्ठ साधु-पुरुषोंसे तथा जो अन्य स्त्री-पुरुष परीक्षा कर सकते हैं, उनसे भी पूछा है; परंतु ऐसे समान समधी और समाजकी जोड़ी कहीं नहीं है और न श्रीरामचन्द्रजीके समान दुलहा तथा श्रीजानकीजी-जैसी दुलहिन ही हैं॥ १५॥

बानी बिधि गौरी हर सेसहूँ गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहुबारिषो।
चारिदस भुवन निहारि नर-नारि सब
नारदसों परदा न नारदु सो पारिखो॥
तिन्ह कही जगमें जगमगति जोरी एक
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारिखो।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही
सीय-सी न तीय न पुरुष राम-सारिखो॥

सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेष और गणेशने कहा है और चिरंजीवी लोमश तथा काकभुशुण्डिजीने साक्षी दी है; जिन नारदजीसे कहीं पर्दा नहीं है और जिनके समान दूसरा कोई स्त्री-पुरुषोंके लक्षणोंका जानकार नहीं है, उन्होंने भी चौदहों भुवनोंके समस्त स्त्री-पुरुषोंको देखकर यही कहा है कि संसारमें

एक श्रीराम जानकीजीकी (ही) जोड़ी जगमगा रही है। उनसे बढ़कर और कौन चार आँखोंवाला बतलाने और सुननेवाला है। स्वयं लक्ष्मी और श्रीमन्नारायण तथा तत्त्वज्ञ हनुमान्‌जीने कहा है कि जानकीजीके समान स्त्री और श्रीरामजीके समान पुरुष नहीं है॥ १६॥

दूलह श्रीरघुनाथु बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
रामको रूपु निहारति जानकी कंकनके नगकी परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥

सुन्दर राजमहलमें श्रीरामचन्द्रजी दुलहा और श्रीजानकीजी दुलहिन बनी हुई हैं। समस्त सुन्दरी स्त्रियाँ मिलकर गीत गा रही हैं और युवक ब्राह्मणलोग जुटकर वेदपाठ कर रहे हैं। उस अवसरमें श्रीजानकीजी हाथके कंकणके नगमें पड़ी हुई श्रीरामचन्द्रजीकी परछाहीं निहार रही हैं, इससे वे सारी सुधि भूल गयी हैं अर्थात् रूपकी शोभामें मन लीन हो गया है। उनके हाथ जहाँ-के-तहाँ रुक गये हैं और वे पलकें भी नहीं हिलाती हैं॥ १७॥

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंडु खंड्यौ,
चंड बाहुदंडु जाको ताहीसों कहतु हौं।
कठिन कुठार-धार धरिबेको धीर ताहि,
बीरता बिदित ताको देखिए चहतु हौं॥
तुलसी समाजु राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मृगराजु गजराजु ज्यों गहतु हौं।
छोनीमें न छाड्यौ छप्यौ छोनिपको छोना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥

[परशुरामजीने गरजकर कहा—] राजाओंकी मण्डलीमें जिसने शिवजीका प्रचण्ड धनुष तोड़ा है और जिसके भुजदण्ड बड़े प्रचण्ड हैं, मैं उसीसे कहता हूँ—मैं अपने कठिन कुठारकी धारको धारण करनेकी उसकी धीरता और प्रसिद्ध वीरता देखना चाहता हूँ। वह राज-समाजको छोड़कर आज अलग विराजमान हो जाय अर्थात् राज-समाजसे बाहर निकल आवे। जैसे हाथीको सिंह

पकड़ता है, वैसे ही मैं उसे पकड़ूँगा। मैंने पृथ्वीपर राजाओंके छिपे हुए छोटे बालकको भी नहीं छोड़ा; मैं राजाओंको मारनेकी उत्कृष्ट कीर्ति धारण किये हुए हूँ॥ १८॥

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानी त्रास औनिपनि मानो मौनता गही।
रोष माखे लखनु अकनि अनखोही बातैं,
तुलसी बिनीत बानी बिहसि ऐसी कही॥
सुजस तिहारें भरे भुअन भृगुतिलक,
प्रगट प्रतापु आपु कह्यो सो सबै सही।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासनु महेसजूको,
रावरी पिनाकमें सरीकता कहाँ रही॥

जब परशुरामजीने अत्यन्त निरादरपूर्ण वचन कहे तब सब राजालोग भयभीत हो ऐसे चुप हो गये, मानो मौन ग्रहण कर लिया हो। किंतु ऐसे अनखावने वचन सुनकर लक्ष्मणजी रोषमें भर गये और हँसकर इस प्रकार नम्र वचन बोले—'हे भृगुकुलतिलक ! तुम्हारे सुयशसे [चौदहों] भुवन भरे हुए हैं। आपने जो अपना प्रसिद्ध प्रताप बखान किया है, सो सब सही है। परंतु शिवजीका जो धनुष टूट गया, वह तो अब जुड़ नहीं सकेगा। इस धनुषमें तो आपका कोई हिस्सा भी नहीं था [जो आप इतना क्रोध करते हैं]'॥ १९॥

गर्भके अर्भक काटनकों पटु धार कुठारु कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौं बलु ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भर्‌यौ कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको॥

[तब परशुरामजी बोले—] जिसके भयंकर कुठारकी धार गर्भके बालकोंको भी काटनेमें कुशल है, वही मैं इस राजसभामें पूछता हूँ कि किसने इस धनुषको तोड़ा है? उसके बलको मैं नष्ट करूँगा। छोटे मुँहसे बड़े-बड़े उत्तर देता है। क्या लड़-मरकर कुछ नाम करेगा? हे कौशिक! यह गोरा और घमण्ड-गुमानसे भरा हुआ छोटा-सा लड़का किसका है?॥ २०॥

मखु राखिबेके काज राजा मेरे संग दए,
दले जातुधान जे जितैया बिबुधेसके।
गौतमकी तीय तारी, मेटे अघ भूरि भार,
लोचन-अतिथि भए जनक जनेसके॥
चंड बाहुदंड-बल चंडीस-कोदंडु खंड्यौ,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देसके।
साँवरे-गोरे सरीर धीर महाबीर दोऊ,
नाम रामु लखनु कुमार कोसलेसके॥

[तब विश्वामित्रजीने कहा—] मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये महाराज दशरथने इन्हें मेरे सङ्ग कर दिया था और इन्होंने ऐसे-ऐसे राक्षसोंका नाश किया है, जो इन्द्रको भी जीतनेवाले थे। गौतमकी स्त्री अहल्याके बड़े भारी पापको नष्ट कर उसे तार दिया है। अब नरनाथ जनकके नेत्रोंके अतिथि हुए हैं। इन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्डके बलसे शिवजीके धनुषको तोड़ डाला है और देश-देशके राजाओंको जीतकर जानकीजीको विवाह लिया है। इन साँवले और गोरे शरीरवाले बड़े वीर और धीर दोनों बालकोंका नाम राम और लक्ष्मण है। ये कोसलदेशपति महाराज दशरथके राजकुमार हैं॥ २१॥

काल कराल नृपालन्हके धनुभंगु सुनै फरसा लिएँ धाए।
लक्खनु रामु बिलोकि सप्रेम महारिसतें फिरि आँखि दिखाए॥
धीरसिरोमनि बीर बड़े बिनयी बिजयी रघुनाथु सुहाए।
लायक हे भृगुनायकु, से धनु-सायक सौंपि सुभायँ सिधाए॥

धनुष-भङ्ग सुनकर राजाओंके कराल कालरूप श्रीपरशुरामजी अपना कुठार लेकर दौड़े। मोहिनी मूर्ति श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको पहले प्रेमपूर्वक देखा, फिर महाक्रोधमें आ आँखें दिखाने लगे। श्रीरामचन्द्रजी स्वभावसे ही धीरशिरोमणि, महावीर, परमविनयी और विजयशील हैं। यद्यपि भृगुनायक परशुरामजी बड़े सुयोग्य वीर थे, तो भी उन्हें अपने धनुष-बाण सौंपकर चले गये॥ २२॥

(इति बालकाण्ड)

अयोध्याकाण्ड

वन-गमन

कीरके कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबासके रूख ज्यों, पंथके साथ ज्यों लोग-लोगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नाई॥

श्रीरामके अङ्गोंने राजोचित वस्त्रों और अलंकारोंका त्यागकर वही शोभा पायी जो सुग्गा अपने पंखोंको त्यागकर पाता है। अयोध्याको मार्गनिवास (चट्टी) के वृक्षों और वहाँके स्त्री-पुरुषोंको रास्तेके साथियोंके समान त्याग दिया। साथमें सुन्दर भाई और पवित्र प्रिया ऐसे मालूम होते हैं, मानो धर्म और क्रिया सुन्दर देह धारण किये हुए हों। कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताका राज्य बटोहीकी तरह छोड़कर चल दिये॥ १॥

[जैसे सुग्गा वसन्त-ऋतुमें अपने पुराने पंखोंको त्यागकर आनन्दित होता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीने राजवस्त्र और अलंकारोंको आनन्दसे त्याग दिया। जैसे रास्तेमें निवासस्थानके वृक्षको त्यागनेमें कुछ भी खेद नहीं होता, वैसे ही उन्होंने अयोध्याको सहर्ष त्याग दिया और रास्तेके संगी-साथियोंको त्यागनेमें जैसे मोह नहीं सताता, वैसे ही पुरवासी नर-नारियोंको त्यागनेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। तात्पर्य यह कि जैसे बटोही मार्गकी सब वस्तुओंको बिना खेद त्यागकर चला जाता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताके राज्यादिको किसी अन्य पुरुषके समान त्यागकर चल दिये।]

कागर कीर ज्यों भूषन-चीर सरीरु लस्यो तजि नीरु ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नाईं॥

भगवान्‌के लिये वस्त्र और आभूषण तोतेके पंखके समान थे। उन्हें त्याग देनेपर उनका शरीर ऐसा सुशोभित हुआ, जैसे काईको हटानेपर जल। माता-पिता और प्रिय लोगोंको स्वभावसे ही उनके स्नेह और सम्बन्धानुसार सम्मानित कर कमलनयन भगवान् राम साथमें सुन्दर स्त्री और भले भाईको ले अपने

पिताका राज्य अन्य पुरुषकी भाँति छोड़कर चल दिये, मानो वे अयोध्यामें दो ही दिनकी मेहमानीपर थे॥ २॥

सिथिल सनेहँ कहैं कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है।
कहै मोहि मैया, कहौं मैं न मैया, भरतकी,
बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है॥
तुलसी सरल भायँ रघुरायँ माय मानी,
काय-मन-बानीहूँ न जानी कै मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुखु सिरिस-सुमन-सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥

कौसल्याजी प्रेमसे विह्वल होकर सुमित्राजीसे कहती हैं—"हे सखि ! मैंने कैकेयीको कभी सौत नहीं समझा। सदा अपनी बहिनके समान उसका पालन किया। जब रामचन्द्रजी मुझको मैया कहते थे तो मैं यही कहती थी, 'मैं तेरी नहीं, भरतकी माता हूँ। भैया ! मैं तेरी बलैया लेती हूँ—तेरी माता तो कैकेयी है।' [गोसाईंजी कहते हैं—] रामचन्द्रने भी सरल भावसे, मन-वचन-कर्मसे कैकेयीको माता ही माना, कभी विमाता नहीं समझा। परंतु वाम विधाताने हमारे सिरस-सुमन-सदृश सुकुमार सुख (को काटने) के लिये छलरूपी छुरीको वज्रपर पैनाया है"॥ ३॥

कीजै कहा, जीजी जू ! सुमित्रा परि पायँ कहै,
तुलसी सहावै बिधि, सोई सहियतु है।
रावरो सुभाउ रामजन्म ही तें जानियत,
भरतकी मातु को कि ऐसो चहियतु है॥
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ
राज-पूतु पाएहूँ न सुखु लहियतु है।
देह सुधागेह, ताहि मृगहूँ मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है॥

सुमित्राजी कौसल्याजीके पैरोंपर पड़कर कहती हैं—'बहिनजी ! क्या किया जाय ! विधाता जो कुछ सहाता है, वह सहना ही पड़ता है। आपका स्वभाव तो रामजीके जन्महीसे जाना जाता है, परंतु भरतकी माताको क्या ऐसा करना

उचित था? तुमने राजाके घरमें जन्म लिया, राजाके घर ही ब्याही गयीं, राज्याधिकारी (सर्वश्रेष्ठ) पुत्र भी पाया, पर तो भी तुम सुखलाभ न कर सकीं। देखो, चन्द्रमाका शरीर अमृतका आश्रय है; किंतु उसे मृगने कलंकित कर दिया और ऊपरसे बाहुरहित राहु भी उसे ग्रस लेता है'॥ ४॥

गुहका पादप्रक्षालन

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदीं भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरें गिरि मेरु सिलाकन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥

जिसके नामने संसाररूपी अपार नदीमें डूबते हुए अजामिल-जैसे करोड़ों पापियोंका उद्धार कर दिया और जिसके स्मरणमात्रसे सुमेरुके समान पर्वत पत्थरके कणके बराबर और बढ़ा हुआ समुद्र भी बकरीके खुरके समान हो जाता है; गोसाईंजी कहते हैं—जिनके चरणकमलसे (श्रीगङ्गा) नदी प्रकट हुई हैं, जो बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हैं, वे समर्थ श्रीरामचन्द्रजी इस नदीको पार करनेके लिये किनारेपर खड़े होकर नाव माँग रहे हैं॥ ५॥

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू।
परसें पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंबु न और कछू, लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

[केवट कहता है—] इस घाटसे थोड़ी ही दूरपर केवल कमरभर जल है। चलिये, मैं थाह दिखला दूँगा [मैं नावपर तो आपको ले नहीं जाऊँगा, क्योंकि यदि अहल्याके समान] आपकी चरणरजका स्पर्श कर मेरी नावका भी उद्धार हो गया तो मैं घरकी स्त्रीको कैसे समझाऊँगा? मुझको [जीविकाके लिये] और कुछ अवलम्ब नहीं है। अतः फिर अपने बाल-बच्चोंका पालन मैं किस प्रकार करूँगा? हे नाथ ! बिना आपके चरण धोये मैं नावपर नहीं चढ़ाऊँगा, चाहे आप मुझे मार डालिये॥ ६॥

रावरे दोषु न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहनु काठको कोमल है, जलु खाइ रहा है॥

पावन पाय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवटके बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

इसमें आपके चरणोंका कोई दोष नहीं है। आपके चरणकी धूलिका प्रभाव ही बहुत बड़ा है। जिसके स्पर्शसे अहल्या पत्थरसे सुन्दरी स्त्री हो गयी, उससे इस नौकाका उद्धार हो जाना कौन बड़ी बात है? क्योंकि पत्थरकी अपेक्षा तो यह काठका जलयान कोमल है और तिसपर यह पानी खाये हुए है अर्थात् पानीमें रहनेसे और भी अधिक कोमल हो गया है। अत: मैं तो आपके पवित्र चरणकमलको धोकर ही नावपर चढ़ाऊँगा, कहिये क्या आज्ञा है? गोसाईंजी कहते हैं कि केवटके ये श्रेष्ठ [चतुरताके] वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीकी ओर देखकर ठहाका मारकर हँसे॥ ७॥

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवटकी जाति, कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन, कैसें दूसरी गढ़ाइहौं॥
गौतमकी घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभुसों निषादु ह्वै कै बादु ना बढ़ाइहौं।
तुलसीके ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोएँ नाथ, नाव ना चढ़ाइहौं॥

घरमें पत्तलपर मछलीके सिवा और कुछ नहीं है और बच्चे सब छोटे-छोटे हैं [अभी कमाने योग्य नहीं हैं] जातिका मैं केवट हूँ, उन्हें कुछ वेद तो पढ़ाऊँगा नहीं। राजाजी ! मेरा तो सारा परिवार इसीके आश्रय है तथा मैं धनहीन और दरिद्र हूँ, दूसरी नौका भी कहाँसे बनवाऊँगा। यदि गौतमकी स्त्रीके समान मेरी यह नाव भी तर गयी तो हे प्रभो ! जातिका निषाद होकर मैं आपसे बात भी नहीं बढ़ा सकूँगा (झगड़ नहीं सकूँगा)। हे नाथ ! हे तुलसीश राम ! आपसे मैं सच कहता हूँ, बिना पैर धोये आपको नावपर नहीं चढ़ाऊँगा॥ ८॥

जिन्हको पुनीत बारि धारैं सिरपै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहैं गाइकै।
जिन्हको जोगींद्र मुनि बृंद देव देह दमि,
करत बिबिध जोग-जप मनु लाइकै॥

तुलसी जिन्हकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लेवाइकै।
तेई पाय पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै॥

जिन चरणोंके (धोवनरूप) पवित्र जल—श्रीगङ्गाजीको शिवजी अपने सिरपर धारण करते हैं, जिन (गङ्गाजी) के यशका वेद भी गा-गाकर वर्णन करते हैं, जिनके लिये योगीश्वर, मुनिगण और देवतालोग देहका दमन कर, मन लगाकर अनेक प्रकारके योग और जप करते हैं; गोसाईंजी कहते हैं, जिनकी धूलिको स्पर्शकर अहल्या तर गयी और गौतमजी गौनेके समान अपनी स्त्रीको लिवाकर घर ले गये; उन्हीं चरणोंको पाकर बिना धोये नावपर चढ़ाकर मैं अपनी मजूरी नहीं खोऊँगा और न अपनी हँसी कराऊँगा?॥ ९॥

प्रभुरुख पाइ कै, बोलाइ बालक घरनिहि,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजूको,
धोइ पाय पीअत पुनीत बारि फेरि-फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भागु, सानुराग सुर
बरषैं सुमन, जय-जय कहैं टेरि-टेरि।
बिबिध सनेह-सानी बानी असयानी सुनि,
हँसैं राघौ जानकी-लखन तन हेरि-हेरि॥

श्रीरामचन्द्रजीका रुख देख केवटने अपने लड़के और स्त्रीको बुलवाया। वे सब प्रभुके चरणोंकी वन्दना कर चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठ गये। पुनः छोटे-से काठके कठौतेमें गङ्गाजीका जल लाया और चरण धोकर उस पवित्र जलको बार-बार पीने लगा। गोसाईंजी कहते हैं कि देवतालोग केवटके भाग्यकी बड़ाई कर प्रेमसहित फूल बरसाने और पुकार-पुकारकर जय-जयकार करने लगे। (केवटपरिवारकी) नाना प्रकारकी प्रेमभरी भोली-भोली बातोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजीकी ओर देख-देखकर हँसते हैं॥ १०॥

वनके मार्गमें

पुरतें निकसी रघुबीरबधू, धरि धीर दए मगमें डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥

फिरि बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

रघुवीरप्रिया श्रीजानकीजी जब नगरसे बाहर हुई तो वे धैर्य धारण कर मार्गमें दो डग चलीं। इतनेहीमें (सुकुमारताके कारण) उनके ललाटपर जलके कण (पसीनेकी बूँदें) भरपूर झलकने लगे और दोनों मधुर अधरपुट सूख गये। वे घूमकर पूछने लगीं—'हे प्रिय ! अब कितनी दूर और चलना है और कहाँ चलकर पर्णकुटी बनाइयेगा?' पत्नीकी ऐसी आतुरता देख प्रियतमकी अति मनोहर आँखोंसे जल बहने लगा॥ ११॥

जलको गए लक्खनु, हैं लरिका
परिखौ, पिय! छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥
तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाहको नेहु लख्यो,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥

श्रीजानकीजी कहती हैं—'प्रियतम ! लक्ष्मणजी बालक हैं, वे जल लाने गये हैं, सो कहीं छाँहमें एक घड़ी खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा कीजिये। मैं आपके पसीने पोंछकर हवा करूँगी और गरम बालूसे जले हुए चरणोंको धोऊँगी।' प्रियाकी थकावटको जानकर श्रीरामचन्द्रजीने बैठकर बड़ी देरतक उनके पैरोंके काँटे निकाले। जब जानकीजीने अपने प्राणप्रियके प्रेमको देखा तो उनका शरीर आनन्दसे रोमाञ्चित हो गया और नेत्रोंमें आँसू भर आये॥ १२॥

ठाढ़े हैं नवद्रुमडार गहें,
धनु काँधें धरें, कर सायकु लै।
बिकटी भृकुटी, बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छबि है॥
तुलसी अस मूरति आनु हिएँ,
जड! डारु धौं प्रान निछावरि कै।

श्रमसीकर साँवरि देह लसै,
मनो रासि महा तम तारकमै॥

किसी नवीन वृक्षकी डालको पकड़े हुए (श्रीरामचन्द्रजी) खड़े हैं। वे कन्धेपर धनुष धारण किये हुए हैं और हाथमें बाण लिये हुए हैं; उनकी भृकुटी टेढ़ी है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं और कपोलोंकी शोभा अनमोल है। पसीनेकी बूँदोंसे साँवला शरीर ऐसा सुशोभित हो रहा है, मानो तारोंसे युक्त महान् तमोराशि हो। गोसाईंजी कहते हैं—रे जड़ ! ऐसी मूर्तिको प्राण निछावर करके भी हृदयमें बसा॥ १३॥

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
जौवन-उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे-गोरेके बीच भामिनी सुदामिनी-सी,
मुनिपट धारैं, उर फूलनिके हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूपके कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोकके तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥

[मार्गके गाँवोंके नर-नारी श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको देखकर आपसमें इस प्रकार बातें करते हैं—] इनके नेत्र कमलके समान हैं तथा मुख भी कमलके ही सदृश हैं। इनके सिरपर जटाएँ हैं और प्रशस्त अङ्गोंमें यौवनकी उमंग झलक रही है। साँवरे (श्रीरामचन्द्र) और गोरे (लक्ष्मणजी) के मध्यमें बिजलीके समान आभावाली एक रमणी सुशोभित है। ये (तीनों) मुनियोंके वस्त्र धारण किये हैं और इनके हृदयमें फूलोंकी मालाएँ हैं। हाथोंमें धनुष-बाण लिये और कमरमें तरकस कसे ये किसी राजाके अत्यन्त ही अनुपम कुमार हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि त्रिलोकीके इन तीन तिलकोंको देखकर वे नर-नारी ऐसे स्तब्ध रह गये, मानो चित्रशालाके चित्र हों॥ १४॥

आगें सोहै साँवरो कुँवरु गोरो पाछें-पाछें,
आछे मुनिबेष धरें, लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बनही के कटि।
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥

साथ निसिनाथमुखी पाथनाथनंदिनी-सी,
तुलसी बिलोकें चितु लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, जौबन-उमंग तन,
रूपकी उमंग उमगत अंग-अंग हैं॥

आगे-आगे साँवरे और पीछे-पीछे गोरे राजकुमार सुन्दर मुनिवेष धारण किये सुशोभित हैं, जिन्हें देखकर कामदेव भी लज्जित होता है। वे धनुष-बाण लिये हैं और वनके वस्त्र धारण किये हैं। कमरमें भी वनके ही वस्त्र अच्छी तरह कसे हुए हैं और सुन्दर तरकस भी सुशोभित हैं। साथमें समुद्रसुता लक्ष्मीके समान एक चन्द्रमुखी हैं। गोसाईंजी कहते हैं, वे तीनों देखनेसे मनको सङ्ग लगा लेते हैं। उनके मनमें आनन्दकी उमंग है, शरीरमें यौवनकी उमंग है और रूपकी उमंग अङ्ग-अङ्गमें उमँग रही है॥ १४॥

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथें मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन, लसत सुचि सर कर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के॥
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचैं बरूथ बिद्युतछटनि के।
गोरेको बरनु देखें सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोकें गर्ब घटत घटनि के॥

उनका सुन्दर मुख है, कमलके समान सुहावने नेत्र हैं और मस्तकपर जटाओंके मुकुट हैं, जिनमें सुन्दर फूल खोंसे हुए हैं। कन्धोंपर धनुष, हाथोंमें सुन्दर बाण, कमरमें तरकस और वस्त्रोंकी शोभाको लूटनेवाले मुनिवस्त्र सुशोभित हैं। उनके साथ एक सुकुमारी नारी है, जिसके अङ्गोंमें उबटन लगाकर [उसके मैलसे] ब्रह्माने विद्युच्छटाके समूह रचे हैं। गोरे (लक्ष्मणजी) के रंगको देखनेपर सोना सुहावना नहीं मालूम होता और साँवरे कुँवरको देखनेसे श्याम मेघोंका गर्व घट जाता है॥ १६॥

बलकल-बसन, धनु-बान पानि, तून कटि,
रूपके निधान घन-दामिनी-बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग, सहज सुहाए अंग,
नवल कँवलहू तें कोमल चरन हैं॥

औरै सो बसंतु, और रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोकें तन-मनके हरन हैं।
तापस-बेषै बनाइ पथिक पथें सुहाइ,
चले लोकलोचननि सुफल करन हैं॥

वल्कलवस्त्र धारण किये, हाथोंमें धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे दोनों राजकुमार रूपके राशि तथा क्रमशः मेघ और बिजलीके रंगके हैं। साथमें सुन्दरी स्त्री है, अङ्ग स्वाभाविक ही सलोने हैं और चरण नवीन कमलसे भी अधिक कोमल हैं। लक्ष्मणजी मानो दूसरे वसन्त, सीताजी दूसरी रति और श्रीराम दूसरे कामदेव हैं; उनकी मूर्तियाँ अवलोकन करनेसे तन-मनको हरनेवाली हैं; ऐसा जान पड़ता है, मानो ये तीनों (वसन्त, रति और काम) सुन्दर तपस्वियोंका वेष बनाये पथिकरूपसे मार्गमें लोगोंके नेत्रोंको सफल करने चले हैं॥ १७॥

बनिता बनी स्यामल गौरके बीच,
बिलोकहु, री सखि! मोहि-सी ह्वै।
मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
सकुचाति मही पदपंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं,
पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहनरूप
अनूप हैं भूपके बालक द्वै॥

[एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियोंसे कहती है—] 'अरी सखि! साँवरे और गोरे कुँवरके बीचमें एक स्त्री विराजमान है, उसे तनिक मेरे समान होकर देखो। वह बड़ी कोमल है, मार्गमें चलने योग्य नहीं है, कैसे चलेगी। फिर इसके (कोमल) चरणकमलोंका स्पर्श करके तो पृथ्वी भी सकुचाती है।' गोसाईंजी कहते हैं कि उसकी बातें सुनकर सब ग्रामकी स्त्रियाँ थकित हो गयीं; उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रोंसे जल बहने लगा। [सब कहने लगीं कि] ये दोनों राजकुमार सब प्रकार मनोहर, मोह लेनेवाले और अनुपम सुन्दर हैं॥ १८॥

साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है॥

संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रूपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है॥

ये श्याम और गौरवर्ण बालक स्वभावसे ही सुन्दर हैं, इन्होंने मनोहरतामें कामदेवको भी जीत लिया है। ये धनुष-बाण लिये और तरकश कसे हुए हैं, इनके सिरपर जटाएँ सुशोभित हैं और इन्होंने मुनियोंका-सा वेष बना रखा है। साथमें चन्द्रवदनी स्त्रीको लिये हैं, जिसने रतिको अपना थोड़ा-सा रूप दे रखा है। [इन्हें देखकर] हृदय सकुचाता है कि इनके पैरोंमें जूते भी नहीं हैं, ये पैदल कैसे चलेंगे?॥ १९॥

रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यौ तियको जेहिं कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिनमें सखि ! राखिबे जोगु, इन्हैं किमि कै बनबासु दियो है॥

मैंने जान लिया कि रानी महामूर्ख है, उसका हृदय वज्र और पत्थरसे भी कठोर है। राजाको भी कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहा, जिन्होंने स्त्रीके कहे हुएपर कान दिया। अरे ! इनकी मूर्ति ऐसी मनोहारिणी है; भला इन लोगोंका वियोग होनेपर इनके प्रिय लोग कैसे जीते होंगे ? हे सखि ! ये तो आँखोंमें रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास क्यों दिया गया है?॥ २०॥

सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारगमें सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि ! रावरे को हैं॥

तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीसीताजीसे गाँवकी स्त्रियाँ पूछती हैं—'जिनके सिरपर जटाएँ हैं, वक्षःस्थल और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र अरुणवर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण और तरकश धारण किये वनके मार्गमें बड़े भले जान पड़ते हैं और स्वभावसे ही आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो हमारा मन मोहे लेते हैं, बताओ तो हे सखि ! वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं?॥ २१॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं॥

(गाँवकी स्त्रियोंके) अमृत-से सने हुए सुन्दर वचनोंको सुनकर जानकीजी जान गयीं कि ये सब बड़ी चतुरा हैं। अतः नेत्रोंको तिरछा कर उन्हें सैनसे ही कुछ समझाकर मुसकराकर चल दीं। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय लोचनके लाभरूप श्रीरामचन्द्रजीको देखती हुई वे सब सखियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो सूर्यके उदयसे प्रेमरूपी तालाबमें कमलोंकी मनोहर कलियाँ खिल गयी हैं। [अर्थात् श्रीरामचन्द्ररूपी सूर्यके उदयसे प्रेमरूपी सरोवरमें सखियोंके नेत्र कमलकलीके समान विकसित हो गये।] ॥ २२ ॥

धरि धीर कहैं, चलु, देखिअ जाइ, जहाँ सजनी! रजनी रहिहैं।
कहिहै जगु पोच, न सोचु कछू, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल, आपुसमें कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि रामु हिए महि हैं॥

वे सखियाँ धीरज धारणकर (परस्पर) कहती हैं—'हे सजनी! चलो, रातको जहाँ ये रहेंगे उस स्थानको जाकर देखें। यदि संसार हम लोगोंको खोटा भी कहेगा तो कुछ परवा नहीं ! नेत्र तो अपना फल पा जायँगे और कान इनकी सुन्दर बातोंको सुनकर सुख पावेंगे। (हमसे नहीं तो) आपसमें तो अवश्य ही कुछ कहेंगे ही।' गोसाईंजी कहते हैं—अत्यन्त प्रेमसे उनकी आँखें बंद हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें देखकर वे पुलकित हो गयीं॥ २३ ॥

पद कोमल, स्यामल-गौर कलेवर राजत कोटि मनोज लजाएँ।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाएँ॥
जिन्ह देखे सखी ! सतिभायहु तें तुलसी तिन्ह तौ मन फेरि न पाए।
एहिं मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभायँ सिधाए॥

[वे दूसरी स्त्रियोंसे कहने लगीं—]अरी सखि ! आज एक चन्द्रवदनी बालाके सहित दो कुमार स्वभावसे ही इस मार्गसे गये हैं। उनके चरण बड़े कोमल थे तथा श्याम और गौर शरीर करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करते हुए सुशोभित हो रहे थे। उनके हाथमें धनुष-बाण थे। सिरपर जटाएँ थीं तथा कमलके समान अरुणवर्ण नेत्र बड़े ही शोभायमान थे। जिन्होंने उन्हें सद्भावसे भी देख लिया, वे फिर उनकी ओरसे अपने मनको नहीं लौटा सके॥ २४॥

मुखपंकज, कंजबिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनीं भौंहें।
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी कटि तून, धरें धनु-बान, अचानक दिष्टि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तोहि सों, मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं॥

उनके मुख कमलके समान और नेत्र भी कमलके ही समान सुन्दर थे तथा भौंहें कामदेवके धनुषके समान बनी हुई थीं। उनके अति सुन्दर और सुकुमार श्याम-गौर शरीर थे, किशोर अवस्था थी एवं सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं तथा वे कमरमें तरकश कसे और धनुष-बाण लिये थे। जिस समयसे अचानक ही उनकी तिरछी निगाह मुझपर पड़ी है, अरी सखि ! तुझसे किस प्रकार कहूँ, वे दोनों मृदुल मूर्तियाँ मेरे मनमें बसकर मोहित कर रही हैं॥ २५॥

वनमें

प्रेमसों पीछें तिरीछें प्रियाहि चितै चितु दै चले लै चितु चोरैं।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छबि सो मन मोरैं॥
लोचन लोल, चलैं भृकुटीं कल काम-कमानहु सो तृनु तोरैं।
राजत रामु कुरंगके संग निषंगु कसें, धनुसों सरु जोरैं॥

(श्रीराम) पीछेकी ओर प्रेमपूर्वक तिरछी दृष्टिसे दत्तचित्तसे प्रियाकी ओर निहारकर उनका चित्त चुराकर (आखेटको) चले। तुलसीदासजी कहते हैं—(प्रभुके) श्याम शरीरमें पसीना सुशोभित है, वह छवि मेरे हृदयमें हुलास भर देती है। प्रभुके नेत्र चञ्चल हैं और सुन्दर भौंहें चलायमान हो रही हैं, जिन्हें देखकर कामदेवकी जो कमान है, वह भी तृण तोड़ती अर्थात् लज्जित होती है। इस प्रकार तरकश बाँधे तथा धनुषपर बाण चढ़ाये भगवान् राम हरिणके साथ (दौड़ते हुए) बड़े ही सुशोभित हो रहे हैं॥ २६॥

सर चारिक चारु बनाइ कसें कटि, पानि सरासनु सायकु लै।
बन खेलत रामु फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूपु मृगीं मृग चौंकि चकैं, चितवैं, चितु दै।
न डगैं, न भगैं जियँ जानि सिलीमुख पंच धरैं रति नायकु है॥

श्रीरामचन्द्रजी वनमें शिकार खेलते फिरते हैं। उन्होंने दो-चार सुन्दर बाण बड़ी सुघरतासे कमरमें खोंस रखे हैं तथा हाथमें धनुष-बाण लिये हुए हैं।

गोस्वामीजी कहते हैं कि उस शोभाका मैं कैसे वर्णन करूँ? उनके अलौकिक रूपको देखकर मृग और मृगी चौंककर चकित हो जाते हैं और चित्त लगाकर देखने लगते हैं। वे यह जानकर कि पाँच बाण धारण किये साक्षात् कामदेव ही हैं, न तो हिलते हैं और न भागते ही हैं॥ २७॥

बिंधिके बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंदमुखीं परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू! करुना करि काननको पगु धारे॥

विन्ध्यपर्वतपर रहनेवाले महाव्रतधारी उदासी और तपस्वी लोग बिना स्त्रीके दुःखी थे। वे मुनिगण यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए कि इनके कारण गौतमकी स्त्री अहल्या तर गयी, [और बोले] अब सब पत्थर आपके सुन्दर चरणकमलोंके स्पर्शसे चन्द्रमुखी स्त्री हो जायँगे। हे रघुनन्दनजी ! आपने अच्छा किया जो कृपाकर वनमें पधारे॥ २८॥

(इति अयोध्याकाण्ड)

अरण्यकाण्ड

मारीचानुधावन

पंचबटीं बर पर्नकुटी तर बैठे हैं रामु सुभायँ सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छबि-छाए॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतमके मन भाए।
हेमकुरंगके संग सरासनु सायकु लै रघुनायकु धाए॥

पञ्चवटीमें सुन्दर पर्णकुटीके समीप स्वभावसे ही सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी बैठे हैं। (साथमें) प्रिया (श्रीजानकीजी) और प्रिय बन्धु शोभित हैं। गोसाईंजी कहते हैं—उनके सब अङ्ग बड़े ही शोभामय हैं। उस समय एक (सोनेके) मृगको देखकर मृगनयनी (श्रीजानकीजी) ने [उसे लानेके लिये] जो प्रिय वचन कहे, वे प्रियतमके मनको बहुत प्रिय लगे, तब रघुनाथजी धनुष-बाण ले उस सोनेके मृगके पीछे दौड़ पड़े॥ १॥

(इति अरण्यकाण्ड)

किष्किन्धाकाण्ड

समुद्रोल्लङ्घन

जब अङ्गदादिनकी मति-गति मंद भई,
पवनके पूतको न कूदिबेको पलु गो।
साहसी ह्वै सैलपर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरनि को कलु गो॥
'तुलसी' रसातलको निकसि सलिलु आयो,
कोलु कलमल्यो, अहि-कमठको बलु गो।
चारिहू चरनके चपेट चाँपें चिपिटि गो,
उचकें उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥

जब अङ्गदादि वानरोंकी गति और बुद्धि मन्द पड़ गयी [अर्थात् किसीने पार जाना स्वीकार नहीं किया] तब वायुकुमार हनुमान्‌जीको कूदनेमें पलमात्रकी भी देरी नहीं हुई। वे साहसपूर्वक सहसा कौतुकसे ही पर्वतपर आ चारों ओर देखने लगे। इससे शत्रुओंकी शान्ति भंग हो गयी। गोसाईंजी कहते हैं कि रसातलसे जल निकल आया, वाराह भगवान् कलमला गये तथा शेष और कच्छप बलहीन हो गये। चारों चरणोंसे जोरसे दबानेसे पर्वत पृथ्वीमें चिपट गया और फिर उनके कूदनेपर पर्वत भी चार अङ्गुल उचक गया॥ १॥

(इति किष्किन्धाकाण्ड)

सुन्दरकाण्ड

अशोकवन

बासव-बरुन-बिधि-बनतें सुहावनो,
दसाननको काननु बसंतको सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत लालत रति-मारको बिहारु सो॥
देखें बर बापिका तड़ाग बागको बनाउ,
रागबस भो बिरागी पवनकुमारु सो।
सीयकी दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारु सो॥

गोसाईंजी कहते हैं कि रावणका वन इन्द्र, वरुण और ब्रह्माके वनसे भी अधिक सुहावना था। वह मानो वसन्तका शृङ्गार ही था (तात्पर्य यह कि सब वन और उपवनोंका शृङ्गार वसन्त ऋतु है, परंतु रावणका बाग वसन्त ऋतुकी भी शोभा बढ़ानेवाला था) पुराने पत्ते (पतझड़के) समयमें ही गिरते हैं, क्योंकि वायु वहाँ आते हुए डरता था और उसके बागका लालन-पालन रति और कामदेवके विहार-स्थलके समान करता था। उत्तम बावली, तालाब और बागकी बनावट देखकर हनुमान्‌जी-जैसे वैराग्यवान् भी रागके वशीभूत-से हो गये। (किंतु) जब उन्होंने अशोक वृक्षके तले श्रीजानकीजीकी दशा देखी तो उन्हें वह बाग तीनों लोकोंके शोकका सार-सा दिखायी दिया॥ १॥

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीकें सब काल सींचैं सुधासार नीरके।
मेघनाद तें दुलारो, प्रान तें पियारो बागु,
अति अनुरागु जियँ जातुधान धीर कें॥
'तुलसी' सो जानि-सुनि, सीयको दरसु पाइ,
पैठो बाटिकाँ बजाइ बल रघुबीर कें।
बिद्यमान देखत दसाननको काननु सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर कें॥

वहाँ मेघोंके समूह माली हैं और बड़े-बड़े विकराल भट उस बागके

रक्षक हैं। वे सब समय अमृतके सार-सदृश मीठे जलसे उसे अच्छी प्रकार सींचते हैं। धीर-वीर रावणके चित्तमें उस बागके प्रति अत्यन्त अनुराग था। उसे वह मेघनादसे भी अधिक दुलारा और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था। गोसाईंजी कहते हैं—यह सब जान-सुनकर भी हनुमान्‌जी जानकीजीका दर्शन पा श्रीरामचन्द्रजीके बलसे बागमें निःशङ्क घुस गये और रावणके रहते और देखते हुए भी साहसी वायुनन्दनने उस वनको तहस-नहस कर दिया॥ २॥

लंकादहन

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीले गात कै-कै,
लातके अघात सहै, जीमें कहै, कूर हैं॥
बाल किलकारी कै-कै, तारी दै-दै गारी देत,
पाछें लागे, बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर-ठौर दीन्ही आगी,
बिंधिकी दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं॥

राक्षसलोग गली-गली दौड़कर, कपड़े बटोरकर और उन्हें तेलमें डुबा-डुबाकर आकर हनुमान्‌जीकी पूँछमें बाँधते हैं। वैसे ही खिलाड़ी हनुमान्‌जी भी डरते हुए-से शरीरको ढीला कर-करके उनकी लातोंके आघात सहन करते हैं और मन-ही-मन कहते हैं कि ये सब कायर हैं। बालक किलकारी मारकर ताली बजा-बजाकर गाली देते हुए पीछे लगे हैं तथा नगाड़े, ढोल और तुरही बजाये जा रहे हैं। पूँछ बढ़ने लगी और [राक्षसोंने उसमें] जहाँ-तहाँ आग लगा दी, जिससे वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो वह विन्ध्यपर्वतकी दावाग्नि हो अथवा सौ करोड़ सूर्य हों॥ ३॥

लाइ-लाइ आगि भागे बालजाल जहाँ-तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरुतें बिसाल भो।
कौतुकी कपीसु कूदि कनक-कँगूराँ चढ़्यो,
रावन-भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो॥
'तुलसी' बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखें हहरात भट, कालु सो कराल भो।

तेजको निधानु मानो कोटिक कृसानु-भानु,
नख बिकराल, मुखु तैसो रिस लाल भो॥

बाल-समूह [पूँछमें] आग लगा-लगाकर, जहाँ-तहाँ भाग गये और हनुमान्‌जी छोटे हो फंदेसे निकलकर फिर सुमेरु पर्वतसे भी विशाल हो गये। तदनन्तर खिलाड़ी हनुमान् कूदकर सोनेके कँगूरेपर चढ़ गये और वहाँसे उसी समय रावणके राजमहलपर चढ़कर खड़े हो गये। गोसाईंजी कहते हैं, (उस समय) वे आकाशमें अपनी लंबी पूँछ फैलाये हुए सुशोभित थे। उसको देखकर वीरलोग हहर (थर्रा) जाते थे; (उस समय) वे कालके समान भयंकर हो गये। वे तेजके पुञ्ज-से जान पड़ते थे, मानो करोड़ों अग्नि और सूर्य हैं। उनके नख बड़े विकराल थे और वैसे ही मुख भी क्रोधसे लाल हो रहा था॥ ४॥

बालधी बिसाल बिकराल, ज्वालजाल मानो
लंक लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है॥
'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधौं दामिनि-कलापु,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानीं अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो, अब नगरु प्रजारिहै॥

भयंकर ज्वालमालाके सहित विशाल पूँछ ऐसी जान पड़ती थी, मानो लङ्काको निगलनेके लिये कालने जीभ फैलायी है अथवा मानो आकाशमार्गमें अनेकों धूमकेतु भरे हैं अथवा वीररसरूपी वीरने मानो तलवार निकाल ली है। गोसाईंजी कहते हैं कि यह इन्द्रधनुष है अथवा बिजलीका समूह है या सुमेरु पर्वतसे अग्निकी भारी नदी बह चली है। उसे देखकर राक्षस और राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहती हैं—यह वनको तो उजाड़ चुका, अब नगरको और जलावेगा॥ ५॥

जहाँ-तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
जरत निकेतु, धावौ, धावौ, लागी आगि रे।
कहाँ तातु-मातु, भ्रात-भगिनी, भामिनी-भाभी,
ढोटा छोटे छोहरा अभागे भोंडे भागि रे॥

हाथी छोरौ, घोरा छोरौ, महिष-बृषभ छोरौ,
छेरी छोरौ, सोवै सो, जगावौ, जागि, जागि रे।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानीं कहैं,
बार-बार कह्यौं, पिय! कपिसों न लागि रे॥

जहाँ-तहाँ आगकी भभकको देखकर पुकार देते हैं—'अरे, भागो, भागो ! आग लग गयी है, घर जल रहा है। अरे अभागे ! माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-भौजाई, लड़के-बच्चे कहाँ हैं ? अरे गँवार! भाग, भाग। हाथी खोलो, घोड़ा खोलो, भैंस और बैल खोलो तथा बकरियोंको भी खोल दो। वह सोता है, उसे जगा दो। अरे जागो ! जागो !!' गोसाईंजी कहते हैं कि इस दशाको देखकर राक्षसियाँ व्याकुल होकर अपने-अपने पतियोंसे कहती हैं—हे प्रियतम ! हमने बार-बार कहा था कि इस बंदरके मुँह मत लगो॥ ६॥

देखि ज्वालाजालु, हाहाकारु दसकंध सुनि,
कह्यौ, धरो, धरो, धाए बीर बलवान हैं।
लिएँ सूल-सेल, पास-परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरें धनु-बान हैं॥
'तुलसी' समिध सौंज, लंक जग्यकुंडु लखि,
जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं॥

उस (धधकते हुए) अग्निसमूहको देख और लोगोंका हाहाकार सुन रावणने कहा—'अरे, इसे पकड़ो ! इसे पकड़ो !!' यह सुनकर बहुत-से बलवान् योद्धा त्रिशूल, बर्छी, फाँसी, परिघ, मजबूत डंडे और पानी भरे हुए बर्तन लिये दौड़े और कुछ धीर लोगोंने धनुष-बाण भी धारण कर रखे थे। श्रीगोसाईंजी कहते हैं कि लङ्काको यज्ञकुण्ड समझो और वहाँकी सामग्री लकड़ी है तथा राक्षसगण सुपारी, जौ, तिल और धान हैं। हनुमान्‌जीकी पूँछ स्रुवा है, बलवान् शत्रु हवि हैं और उच्च हाँकरूपी स्वाहामन्त्रद्वारा हनुमान्‌जी हवन कर रहे हैं॥ ६॥

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजालजुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धावौ, धावौ, धरौ, सुनि धाए जातुधान धारि,
बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो॥

लपट-झपट झहराने, हहराने बात,
भहराने भट, पर्‍यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि, पेलि सचिव चले लै ठेलि,
नाथ! न चलैगो बलु, अनलु भयावनो॥

हनुमान्‌जी धधकते हुए अग्निसमूह-से सुशोभित हुए और बादलकी भाँति गरजे। इससे बड़े धीर-वीर योद्धा भाग गये और रावण भी व्याकुल हो उठा और बोला, 'दौड़ो, दौड़ो, इसे पकड़ लो।' यह सुनकर राक्षसोंकी सेना दौड़ी, मानो सावनका बादल जल बरसा रहा हो। वे योद्धालोग आगकी लपटोंकी झपटसे झुलसकर और वायुके झकोरोंसे घबड़ाकर व्याकुल हो गये। इस प्रकार उस समय वहाँ भारी भगदड़ पड़ गयी। रावणको भी मन्त्रीलोग धक्कोंसे ढकेलकर और जबरदस्ती ठेलकर ले चले और कहने लगे—'हे नाथ ! आग भयंकर है, इसमें बल नहीं चलेगा'॥ ८॥

बड़ो बिकराल बेषु देखि, सुनि सिंघनादु,
उठ्यो मेघनादु, सबिषाद कहै रावनो।
बेग जित्यो मारुतु, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालताँ, बड़ाई जित्यो बावनो॥
'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने कहैं,
जाको ऐसो दूतु, सो तो साहेबु अबै आवनो।
काहेको कुसल रोषें राम बामदेवहू की,
बिषम बलीसों बादि बैरको बढ़ावनो॥

हनुमान्‌जीका बड़ा भयंकर वेष देख और उनका सिंहनाद सुन मेघनाद उठा और रावण भी चिन्तायुक्त होकर बोला—इसने तो वेगमें वायुको, प्रतापमें करोड़ों सूर्योंको, करालतामें कालको और बड़ाई (विशालता) में भगवान् वामनको भी जीत लिया। तुलसीदासजी कहते हैं—उस समय जो समझदार राक्षस थे, वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—'जिसका दूत ऐसा (प्रचण्ड) है, वह स्वामी तो अभी आना बाकी ही है।' भला रामके क्रोधित होनेपर शिवजीकी भी कुशल कैसे हो सकती है। ऐसे बाँके वीरसे वैर बढ़ाना व्यर्थ ही है॥ ९॥

पानी! पानी! पानी! सब रानीं अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानी गजचालि है।

बसन बिसारें, मनिभूषन सँभारत न,
आनन सुखाने, कहैं, क्योंहू कोऊ पालिहै॥
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहूँ कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है।
बापुरें बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
बानरु बड़ी बलाइ घने घर घालिहै॥

सब रानियाँ व्याकुल होकर 'पानी-पानी' चिल्लाती हैं और दौड़ी चली जा रही हैं। गजकी-सी चालसे ही उनकी गति पहचाननेमें आती है। वे वस्त्र लेना भूल गयी हैं और मणि-जटित आभूषणोंको भी नहीं सँभाल सकी हैं। उनके मुख सूख रहे हैं और वे कहती हैं—'क्या किसी प्रकार भी कोई हमारी रक्षा करेगा?' गोसाईंजी कहते हैं—मन्दोदरी हाथ मल-मलकर और सिर धुन-धुनकर कहती है कि अहो! कल मैंने कितना कहा, फिर भी किसीने उसपर कान नहीं दिया। बेचारे विभीषणने भी बार-बार पुकारकर कहा कि यह वानर बड़ी भारी बला है और बहुत-से घरोंको चौपट कर देगा॥ १०॥

काननु उजार्‌यो तो उजार्‌यो, न बिगार्‌यो कछु,
बानरु बेचारो बाँधि आन्यो हठि हारसों।
निपट निडर देखि काहूँ न लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छड़ाइ कहि कुलके कुठारसों॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों।
'तुलसी' मँदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवै आपु,
बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजारसों॥

'वनको उजाड़ा तो उजाड़ा, उससे कुछ बिगाड़ नहीं हुआ था, किंतु ये बेचारे इस बंदरको उपवनसे हठात् बाँधकर ले आये! उसे बिलकुल निडर देखकर भी किसीने कुछ विशेष नहीं समझा और न कुलकुठार मेघनादसे कहकर किसीने उसे छुड़ाया ही। मेरे छोटे-बड़े सभी पुत्र अन्यायी हैं, ये साँपोंसे खिलवाड़ करते हैं और छूरेकी धारमें अपनी गर्दनें रखते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि मन्दोदरी रो-रोकर अपनेको क्षीण करती है और कहती है कि मैंने इस दाढ़ीजार (मेघनाद) से बार-बार पुकारकर कहा (परंतु इसने मेरी एक बात न सुनी)॥ ११॥

रानीं अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोकि बेषु केसरीकुमारको।
मीजि-मीजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहेर अगारको॥
सबु असबाबु डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जियकी परी, सँभारै सहन-भँडार को।
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनादु,
बयो लुनिअत सब याही दाढ़ीजारको॥

रानियाँ सब जलती हुई घबड़ाकर दौड़ी चली जाती हैं। वे केसरीनन्दन (हनुमान्‌जी) के (विकराल) वेषको देख नहीं सकतीं। रावणकी स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर रह जाती हैं और सिर धुन-धुनकर कहती हैं कि तिलभर वस्तु भी घरके बाहर नहीं हो सकी। सब असबाब जल गया, न मैंने ही निकाला और न तूने ही निकाला। सबको अपने-अपने जीकी पड़ी थी, घर-आँगन कौन सँभालता। मेघनादको देखकर मन्दोदरी दुःखपूर्वक क्रोधित होती है और कहती है कि इसी दाढ़ीजारका बोया हुआ सब काट रहे हैं। [यदि यह इस बंदरको पकड़कर न लाता तो ऐसी आफत क्यों आती?]॥ १२॥

रावन की रानीं बिलखानी कहै जातुधानीं,
हाहा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद! काहे, काहे रे महोदर! तूँ,
धीरजु न देत, लाइ लेत क्यों न हाथसों॥
काहे अतिकाय! काहे, काहे रे अकंपन!
अभागे तीय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों।
'तुलसी' बढ़ाई बादि सालतें बिसाल बाहैं,
याहीं बल बालिसो बिरोधु रघुनाथसों॥

राक्षसियाँ जो रावणकी रानियाँ थीं, बिलख-बिलखकर कहती हैं—'हाय! हाय!! कोई यह हाल बीस भुजा और दस सिरवाले रावणको सुनावे, क्यों रे मेघनाद! क्यों रे महोदर! तुम हमें धैर्य क्यों नहीं बँधाते और अपने हाथोंमें आश्रय क्यों नहीं देते? क्यों रे अतिकाय! क्यों रे अकम्पन! अरे अभागे गँवारो! क्यों स्त्रियोंको त्यागकर साथसे भागे जाते हो? तुमलोगोंने व्यर्थ ही

सालवृक्षके समान बड़ी-बड़ी भुजाएँ बढ़ा रखी हैं; अरे मूर्खो! इसी बलसे रघुनाथजीसे वैर बढ़ाया है?'॥ १३॥

हाट-बाट, कोट-ओट, अटनि, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि हैं॥
बालधी फिरावै, बार-बार झहरावै, झरैं
बुँदिया-सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानीं कहैं,
चित्रहू के कपि सों निसाचरु न लागिहै॥

(इस प्रकार हनुमान्‌जीने) हाट-बाट, किले-प्राकार, अटारी, घर-दरवाजे और गली-गलीमें दौड़-दौड़कर भारी आग लगा दी। सब लोग आर्तनाद कर रहे हैं, कोई किसीको नहीं सँभालता। सब लोग व्याकुल होकर जहाँ-तहाँ भाग चले। हनुमान्‌जी पूँछको घुमाकर बार-बार झाड़ते हैं, उससे बुँदियाकी भाँति चिनगारियाँ झड़ रही हैं, मानो लङ्काको पिघलाकर उसकी चाशनीमें उस बुँदियाको पागेंगे। यह देखकर राक्षसियाँ व्याकुल होकर कहती हैं कि अब राक्षसलोग चित्रके वानरसे भी नहीं भिड़ेंगे॥ १४॥

लगी, लागी आगि, भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ,
धीयको न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंद अंध,
कहैं बारे-बूढ़े 'बारि' बारि, बार बारहीं॥
हय हिहिनात, भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात, अकुलात अति,
'तात तात! तौंसिअत, झौंसिअत, झारहीं'॥

'आग लग गयी, आग लग गयी' ऐसा पुकारते हुए सब लोग जहाँ-तहाँ भाग चले। न माँ लड़कीको सँभालती है और न पिता पुत्रको सँभालता है। केश और वस्त्र खुल गये हैं, सब लोग नंगे हो गये हैं और धुएँकी धुन्धसे अन्धे होकर लड़के-बूढ़े सब बार-बार 'पानी-पानी' पुकार रहे हैं। घोड़े

हिनहिनाते हुए भागे जाते हैं। हाथी चिग्घार मारते हैं और जो बड़ी भारी भीड़ लगी हुई थी, उसे धक्कोंसे ढकेलकर पैरोंसे कुचले डालते हैं। सब लोग नाम ले-लेकर पुकार रहे हैं और अत्यन्त बिलबिलाते तथा अकुलाते हुए कहते हैं, 'बाप रे बाप! आगकी लपटोंसे तो झुलसे जाते हैं, तपे जाते हैं'॥ १५॥

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे।
पानीको ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात 'भ्रात! तूँ निबाहि रे॥
प्रिया तूँ पराहि, नाथ! नाथ! तूँ पराहि, बाप!
बाप! तूँ पराहि, पूत! पूत! तूँ पराहि रे'॥
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे॥

दसों दिशाओंमें ज्वालमालाओंकी भयंकर लपटें फैल गयी हैं। सब लोग धुएँसे व्याकुल हो रहे हैं। उस धूममें कौन किसे पहचान सकता था। लोग पानीके लिये लालायित होकर बिलबिला रहे हैं, शरीर जला जाता है, सब लोग तबाह हुए जाते हैं और कहते हैं—'भैया! बचाओ। प्रिये! तुम भागो। हे नाथ! हे नाथ! भागो। पिताजी! पिताजी! दौड़ो। अरे बेटा! ओ बेटा! भाग।' तुलसीदासजी कहते हैं—सब लोग व्याकुल और परेशान होकर कह रहे हैं—'अरे दशशीश रावण! अब बीसों आँखोंसे अपनी करतूत देख ले'॥ १६॥

बीथिका-बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पवरि-पगार प्रति बानरु बिलोकिए।
अध-ऊर्ध बानर, बिदिसि-दिसि बानरु है,
मानो रह्यो है भरि बानरु तिलोकिएँ॥
मूँदें आँखि हियमें, उघारें आँखि आगें ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ कोकिए।
लेहु, अब लेहु, तब कोऊ न सिखाबो मानो,
सोई सतराइ जाइ, जाहि-जाहि रोकिए॥

[हनुमान्‌जी ऐसी शीघ्रतासे घूम रहे हैं कि] गली-गली, बाजार-बाजार, अटारी-अटारी, घर-घर, द्वार-द्वार, दीवार-दीवारपर वानर ही दिखायी पड़ रहा

है। ऊपर-नीचे और दिशा-विदिशाओंमें वानर ही दीखता है, मानो वह वानर तीनों लोकोंमें भर गया है। आँख मूँदनेसे हृदयमें और आँख खोलनेसे आगे खड़ा दिखायी देता है। जहाँ और किसीको पुकारते हैं, वहाँ मानो हनुमान्‌जी ही जा धमकते हैं। 'लो, अब लो; पहले तो किसीने हमारी शिक्षा नहीं मानी'— इस प्रकार जिसे रोकते हैं, वही सतरा (चिढ़) जाता है॥ १७॥

एक करैं धौंज, एक कहैं, काढ़ौ सौंज, एक
औंजि, पानी पीकै कहैं, बनत न आवनो।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं, पावकु भयावनो॥
'तुलसी' कहत एक 'नीकें हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाड़ै बालु गालको बजावनो'।
'धाओ रे, बुझाओ रे,' 'कि बावरे हौ रावरे, या
औरै आगि लागि, न बुझावै सिंधु सावनो'॥

कोई दौड़ लगाते हैं, कोई कहते हैं, 'असबाब निकालो', कोई ऊमससे घबड़ाकर पानी पीकर कहते हैं कि 'आते नहीं बनता', कोई बड़े संकटमें पड़ गये हैं; कोई जलते ही निकाले जाते हैं, कोई खड़े-खड़े देखते हैं और कहते हैं कि 'अग्नि बड़ी भयंकर है।' तुलसीदासजी कहते हैं—कोई कहते हैं कि 'हनुमान्‌जीने खूब हाथ लगाया, किंतु यह मूर्ख अब भी गाल बजाना नहीं छोड़ता।' कोई कहता है—'अरे दौड़ो, अरे बुझाओ।' दूसरा कहता है—'क्या तुम बावले हुए हो? यह कुछ और ही तरहकी आग लगी है, जिसे समुद्र और सावनका मेघ भी नहीं बुझा सकते'॥ १८॥

कोपि दसकंध तब प्रलयपयोद बोले,
रावन-रजाइ धाए आइ जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति लंक बरत, बुताओ बेगि,
बानरु बहाइ मारौ महाबारि बोरि कै॥
'भलें नाथ!' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि कै।
जीवनतें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुखु मोरि कै॥

तब रावणने क्रोधित होकर प्रलयकालके मेघोंको बुलाया और वे रावणकी आज्ञासे सब अपना दल बटोरकर दौड़े आये। उनसे लङ्कापतिने कहा—'अरे मेघो ! जलती हुई लङ्कापुरीको शीघ्र बुझाओ और बंदरको बहाकर गम्भीर जलमें डुबाकर मार डालो।' तब मेघोंके स्वामी 'महाराज ! बहुत अच्छा' ऐसा कहकर प्रणाम करके चल दिये और बार-बार गरज-गरजकर मूसलधार पानी बरसाने लगे; किंतु जलसे अग्नि और भी प्रज्वलित हो गयी और चपलतापूर्वक चौगुनी बढ़ गयी। तुलसीदासजी कहते हैं—तब सब मेघ घबड़ाकर मुँह मोड़कर भागे॥ १९॥

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब, कहत पुकार हैं।
'जुग-षट भानु देखे, प्रलयकृसानु देखे,
सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं॥
'तुलसी' सुन्यो न कान सलिलु सर्पी-समान,
अति अचिरिजु कियो केसरीकुमार हैं'।
बारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह,
कहैं दससीस! 'ईस-बामता-बिकार हैं'॥

बादल इधर तो अग्निकी लपटोंसे जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानिसे गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क हो सकुचाकर पुकारने लगे—'हम लोगोंने बारहों सूर्य देखे, प्रलयका अग्नि देखा और कई बार शेषजीके मुखकी ज्वाला देखी। परंतु कभी जलको घृतके समान हुआ नहीं सुना। यह महान् आश्चर्य केसरीनन्दन हनुमान्‌जीने कर दिखलाया।' मेघोंके वचन सुनकर मन्त्रीगण सिर धुनने लगे और रावणसे बोले—'यह सब ईश्वरकी प्रतिकूलताका विकार है'॥ २०॥

'पावकु, पवनु, पानी, भानु, हिमवानु, जमु,
कालु, लोकपाल मेरे, डर डावाँडोल हैं।
साहेबु महेसु, सदा संकित रमेसु मोहिं,
महातप साहस बिरंचि लीन्हें मोल हैं॥
'तुलसी' तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजु,
बाजे-बाजे राजनिके बेटा-बेटी ओल हैं।
को है ईस नामको, जो बाम होत मोहूसे को,
मालवान! रावरेके बावरे-से बोल हैं'॥

तब रावणने कहा—अग्नि, वायु, जल, सूर्य, हिमाचल, यम, काल और लोकपाल (इन्द्रादि) मेरे डरसे डाँवाँडोल रहते हैं अर्थात् काँपते रहते हैं। हमारे स्वामी श्रीमहादेवजी हैं, लक्ष्मीपति विष्णु भी हमसे सदा शङ्कित रहते हैं। मैंने साहसपूर्वक महान् तपस्या करके ब्रह्माजीको भी मोल ले लिया है; अर्थात् वे भी मेरे प्रतिकूल नहीं जा सकते। तीनों लोकोंमें आज कोई दूसरा राजा विराजमान नहीं है और तो क्या, बाजे-बाजे, राजाओंके बेटा-बेटीतक हमारे यहाँ ओलमें (गिरवी) हैं। माल्यवान्! तुम्हारे वचन पागलोंके-से हैं। यह 'ईश्वर' नामका व्यक्ति कौन है, जो मेरे-जैसे शूरवीरके प्रतिकूल जा सकता है?॥ २१॥

भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाक-
पाल, लोकपाल जेते, सुभट-समाजु है।
कहै मालवान, जातुधानपति! रावरे को
मनहूँ अकाजु आनै, ऐसो कौन आजु है॥
रामकोहु पावकु, समीरु सीय-स्वासु, कीसु,
ईस-बामता बिलोकु, बानरको ब्याजु है।
जारत पचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीरु तोसो सूर-सिरताजु है॥

तब माल्यवान् कहने लगा—'पृथ्वीमें जितने राजा हैं, पातालमें जितने सर्पराज हैं, जितने स्वर्गके अधिपति और लोकपाल हैं और जितना वीरोंका समाज है, हे राक्षसेश्वर! उनमेंसे आज ऐसा कौन है, जो मनसे भी आपका अपकार करनेकी सोचे? किंतु यह अग्नि तो श्रीरामचन्द्रजीका क्रोध है और वायु जानकीजीका श्वास है। और देखो, वानरके रूपमें यह ईश्वरकी प्रतिकूलता ही है, वानरका तो बहानामात्र है। इसीसे जहाँ तुम्हारे समान शूरशिरोमणि बाँका वीर मौजूद है, वहीं यह बार-बार बलपूर्वक किसी प्रकारकी शङ्का न करता हुआ लङ्काको जला रहा है॥ २२॥

पान-पकवान बिधि नाना के, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनककिरीट कोटि पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं॥
प्रबल अनल बाढ़ें जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े,
झपट-लपट भरे भवन-भँडारहीं।

'तुलसी' अगारु न पगारु न बजारु बच्यो,
हाथी हथसार जरे घोरे घोरसारहीं॥

अनेक प्रकारके पेय पदार्थ, पक्वान्न, अचार, सीधा (चावल-दाल आदि) और अनेक प्रकारके धान बखारमें ही जल रहे हैं। करोड़ों सोनेके मुकुट, पलंग, पिटारे और सिंहासन निकालनेमें कहार लोग भार लिये हुए ही जल रहे हैं, प्रबल अग्निके बढ़ जानेसे जो वस्तुएँ जहाँ निकालकर रखीं, वहीं जल गयीं तथा अग्निकी झपट और लपट घर और भण्डारमें भर गयीं। गोसाईंजी कहते हैं कि न तो घर बचा और न दीवार या बजार ही बचा। हाथी हाथीखानेमें और घोड़े घुड़सालहीमें जल गये॥ २३॥

हाट-बाट हाटकु पिघिलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब
पागि पागि ढेरी कीन्ही भलीभाँति भायसों॥
पाहुने कृसानु पवमानसों परोसो, हनुमान
सनमानि कै जेंवाए चित-चायसों।
'तुलसी' निहारि अरिनारि दै-दै गारि कहैं
'बावरें सुरारि बैरु कीन्हौ रामरायसों'॥

बाजार तथा राहमें ढेर-का-ढेर सोना घीके समान पिघलकर बहने लगा। अग्निके तापसे सोनेकी लङ्कारूपी कराही खदक रही है, उसमें बलवान् राक्षसरूपी अनेक प्रकारकी मिठाइयोंको बड़े प्रेमसे पागकर खूब ढेर लगा दिया है और अपने अग्निरूपी पाहुनेको वायुद्वारा परसवाकर हनुमान्‌जीने बड़े चावसे आदरपूर्वक भोजन कराया है। यह देखकर शत्रुकी स्त्रियाँ गाली दे-देकर कहती हैं—'अरे! पागल रावणने श्रीरामचन्द्रके साथ वैर किया है!'॥ २४॥

रावनु सो राजरोगु बाढ़त बिराट-उर,
दिनु-दिनु बिकल, सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो॥
रामकी रजाइतें रसाइनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।

जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
रतन जतन जारि कियो है मृगांक-सो॥

विराट् पुरुषके हृदयमें रावणरूपी राजरोग बढ़ रहा था; जिससे व्याकुल होकर वह दिनोंदिन समस्त सुखोंसे हीन होता जाता था। देवता, सिद्ध और मुनिगण अनेक प्रकारकी ओषधि करके हार गये, परंतु न तो वह शोकरहित होता था, न कुछ भी चैन पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे रसवैद्य हनुमान्‌जीने समुद्रके पार उतरकर और (लङ्कारूपी) शिकारेको ठीक करके राक्षसरूपी बूटियोंके रसमें लङ्काके सोने और रत्नोंको यत्नपूर्वक फूँककर मृगाङ्क (एक प्रकारका रसौषधि-विशेष) बना डाला॥ २५॥

सीताजीसे विदाई

जारि-बारि, कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो पगनि, भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
मातु! कृपा कीजै, सहिदानि दीजै, सुनि सीय
दीन्ही है असीस चारु चूडामनि छोरि कै॥
कहा कहौं तात! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही, सो चले तुम्ह तोरि कै।
'तुलसी' सनीर नैन, नेहसो सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥

फिर हनुमान्‌जीने लङ्काको जला और उसे धूमरहित कर अपनी पूँछको समुद्रमें बुता (श्रीजानकीजीके) चरणोंमें सिर नवाया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये, (तथा कहने लगे—) 'हे मातः! कृपाकर कोई सहिदानी (चिह्न) दीजिये।' यह सुनकर श्रीजानकीजीने आशीर्वाद दिया और अपना सुन्दर चूड़ामणि उतारकर उसे देते हुए कहा—'भैया! मैं तुमसे क्या कहूँ? हमारे दिन किस प्रकार कट रहे हैं,सो तो तुम देखे ही जाते हो। तुम्हारे रहनेसे बड़ा सहारा था, उसे भी तुम तोड़कर चल दिये।' गोसाईंजी कहते हैं—जानकीजीके नेत्रोंमें जल भर आया और वाणी शिथिल हो गयी। (इस प्रकार सीताजीको) व्याकुल देख हनुमान्‌जी उन्हें विनयपूर्वक समझाते हुए कहने लगे॥ ५०॥

'दिवस छ-सात जात जानिबे न, मातु! धरु
धीर, अरि-अंतकी अवधि रहि थोरिकै।

बारिधि बँधाइ सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु
सानुज कुसल कपिकटकु बटोरि कै'॥
बचन बिनीत कहि, सीताको प्रबोधु करि,
'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
'जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी'
कपीसु कूद्यो बात-घात उदधि हलोरि कै॥

'मातः ! धैर्य धारण करो ! आपको छः-सात दिन बीतते कुछ मालूम न होंगे। अब शत्रुके नाशकी अवधि थोड़ी ही रह गयी है। भाईके सहित सूर्यकुलकेतु (श्रीरामचन्द्रजी) वानरसेना एकत्रित कर, समुद्रमें पुल बाँध यहाँ (शीघ्र ही) सकुशल पधारेंगे।' इस प्रकार नम्र वचन कह, जानकीजीको समझाकर हनुमान्‌जी त्रिकूट पर्वतपर चढ़ गये और बड़े जोरसे चिल्लाकर बोले—'रावणरूप गजराजके लिये मृगराजतुल्य जानकीवल्लभ (भगवान् श्रीराम) की जय हो।' (ऐसा कहकर) कपिराज (श्रीहनुमान्‌जी) वायुके आघातसे समुद्रमें हिलोरें उत्पन्न करते हुए (समुद्रके उस पार) कूद गये॥ २७॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि
लंक सिद्धपीठु निसि जागो है मसानु सो।
'तुलसी' बिलोकि महासाहसु प्रसन्न भई
देबी सीय-सारिखी, दियो है बरदानु सो॥
बाटिका उजारि, अछधारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुलभानुको प्रतापभानु-भानु-सो।
करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक कपि,
कहै जामवंत, आयो, आयो हनुमानु सो॥

साहसी वायुनन्दनने समुद्रको लाँघ और लङ्कारूपी सिद्धपीठको जान उसने रातभर मसान-सा जगाया है। उनके इस महान् साहसको देख श्रीजानकीजी-जैसी देवी प्रसन्न हुईं और उन्हें वरदान दिया। उस समय जाम्बवान् कहने लगे—'वाटिकाको उजाड़, अक्षयकुमारकी सेनाका संहार कर और फिर लङ्काको जलाकर भानुकुलभानु श्रीरामचन्द्रके प्रतापरूप सूर्यकी किरणके समान लोकरूपी कमल और वानररूपी चक्रवाकोंको शोकरहित करते हनुमान्‌जी आ गये, आ गये'॥ २८॥

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भए सानँद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिकसमाजु, मानो
आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं॥
'जै जै जानकीस, जै जै लखन-कपीस' कहि,
कूदैं कपि कौतुकी नटत रेत-रेत हैं।
अंगदु मयंदु नलु नीलु बलसील महा
बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं॥

किलकारीके उच्च शब्दको सुनकर (सब वानर और भालु) आकाशकी ओर देखने लगे और हनुमान्‌जीको पहचानकर आनन्दित और सचेत हो गये, मानो जहाजके साथ पथिकोंका समाज डूबता-डूबता बच गया। वे सब आज अपना नया जन्म जान एक-दूसरेसे गले लगकर मिलने लगे। 'जय जानकीश, जय जानकीश, जय लक्ष्मणजी, जय सुग्रीव' ऐसा कहते हुए वे कौतुकी वानर कूदते हैं और समुद्रकी रेतीपर नाचते हैं। बलशाली अङ्गद, मयन्द, नील, नल—ये सब अपनी विशाल पूछोंको घुमाते हैं और अनेक प्रकारसे मुँह बनाते हैं॥ २९॥

आयो हनुमानु, प्रानहेतु अंकमाल देत,
लेत पगधूरि एक, चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार-बार सीय-समाचार, कहें
पवनकुमारु, भो बिगतश्रम-सूल हैं॥
एक भूखे जानि, आगें आनैं कंद-मूल-फल,
एक पूजैं बाहु बलमूल तोरि फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी' सकल सिधि ताकें, जाकें
कृपा-पाथनाथ सीतानाथु सानुकूल हैं॥

अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाले हनुमान्‌जीको आया देख कोई उनसे गले लगकर मिलते हैं, कोई चरणधूलि लेते हैं। कोई पूँछ चूमते हैं, कोई बार-बार जानकीजीके समाचार पूछते हैं। जिन्हें कहनेहीसे हनुमान्‌जीकी सारी थकावट और व्यथा जाती रही। कोई हनुमान्‌जीको भूखे जान उनके आगे कन्द-मूल-फल लाकर रख देते हैं। कोई फूल तोड़कर हनुमान्‌जीकी बलशालिनी भुजाओंका पूजन करते हैं। कोई कहते हैं कि कृपासिंधु सीतानाथ जिसके ऊपर

अनुकूल हैं, उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं॥ ३०॥

सीयको सनेहु, सीलु, कथा तथा लंकाकी
कहत चले चायसों, सिरानो पथु छनमें।
कह्यो जुबराज बोलि बानरसमाजु, आजु
खाहु फल, सुनि पेलि पैठे मधुबनमें॥
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
'उजारे बाग अंगद', देखाए घाय तनमें।
कहै कपिराजु, करि काजु आये कीस, तुल-
सीसकी सपथ, महामोदु मेरे मनमें॥

फिर वे सब श्रीजानकीजीके प्रेम और शीलकी तथा लङ्काकी कथा बड़े चावसे कहते हुए चले, (जिससे) क्षणमात्रमें रास्ता समाप्त हो गया। [किष्किन्धामें पहुँचनेपर] युवराज (अङ्गद) ने कपिसमाजको बुलाकर कहा—'आज सब लोग फल खाओ !' यह सुनकर वे सब-के-सब बलपूर्वक मधुवनमें घुस गये। उन्होंने जिन बागवानोंको मारा, वे पुकारते हुए दरबारमें गये और शरीरमें घाव दिखाकर कहने लगे कि युवराज अङ्गदने बागोंको उजाड़ दिया [और हमलोगोंको मारा], तब सुग्रीवने कहा—तुलसीके स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) की शपथ है, आज मेरे मनमें बड़ा आनन्द है; मालूम होता है, वानरगण कार्य कर आये हैं॥ ३१॥

भगवान् रामकी उदारता

नगरु कुबेरको सुमेरुकी बराबरी,
बिरंचि-बुद्धिको बिलासु लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावनु सो राजा रज-तेजको निधानु भो॥
'तुलसी' तिलोककी समृद्धि, सौंज, संपदा
सकेलि चाकि राखी, रासि, जाँगरु जहानु भो।
तीसरें उपास बनबास सिंधु पास सो
समाजु महाराजजू को एक दिन दानु भो॥

कुबेरकी पुरी लङ्का (स्वर्णमय होनेके कारण) सुमेरुके समान है। वह

मानो ब्रह्माकी बुद्धिका कौशल ही बनकर खड़ा हो गया है। वहाँ राजसी तेजकी खान, बीस भुजाओंवाला रावण श्रीमहादेवजीको अपने मस्तक चढ़ाकर राजा हुआ। तुलसीदासजी कहते हैं—मानो तीनों लोकोंकी विभूति, सामग्री और सम्पत्तिकी राशिको एकत्रित कर यहीं चाँक लगाकर (सीमा बाँधकर) रख दी है तथा इसीका भूसा आदि सारा संसार बन गया। यह सारी सम्पत्ति वनवासी महाराज रामजीको समुद्रतटपर तीन दिन उपवास करनेके बाद [विभीषणको देते समय] एक दिनका दान हो गयी॥ ३२॥

(इति सुन्दरकाण्ड)

लंकाकाण्ड

राक्षसोंकी चिन्ता

बड़े बिकराल भालु-बानर बिसाल बड़े,
'तुलसी' बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि
मंडि मेदिनीको मंडलीक-लीक लोपिहैं॥
लंकदाहु देखें न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपिहैं।
बाँचिहै न पाछैं तिपुरारिहू मुरारिहू के,
को है रन रारिको जौं कोसलेसु कोपिहैं॥

लंकाका दाह देखकर किसीका उत्साह नहीं रहा। पीछे सब मन्त्रिगण प्रणपूर्वक पुकार-पुकारकर कहने लगे—'महाभयानक भालू और बड़े विशालकाय वानर बड़े-बड़े पहाड़ लाकर समुद्रको तोप (पाट) देंगे। वे अत्यन्त प्रबल पराक्रमी और दुर्दण्ड वीरोंके भुजदण्डोंका खण्डन कर और उनसे पृथ्वीको समलंकृत कर त्रिभुवनविजयी (रावण) की मर्यादाका लोप कर देंगे।' शिवजी और विष्णुभगवान्‌के बचानेपर भी कोई नहीं बचेगा। यदि श्रीरामचन्द्रजीने क्रोध किया तो उनसे युद्ध करनेवाला भला कौन है?॥ १॥

त्रिजटाका आश्वासन

त्रिजटा कहति बार-बार तुलसीस्वरीसों,
'राघौ बान एकहीं समुद्र सातौ सोषिहैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि जम्बुकादि,
जोगिनी-जमाति कालिकाकलाप तोषिहैं॥
राजु दै नेवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं।
कौन दसकंधु, कौन मेघनादु बापुरो,
को कुंभकर्नु कीटु, जब रामु रन रोषिहैं'॥

त्रिजटा राक्षसी तुलसीदासकी स्वामिनी श्रीजानकीजीसे बार-बार कहती है कि श्रीरामचन्द्रजी एक ही बाणसे सातों समुद्रोंको सोख लेंगे। वे राक्षससेनाका कुलसहित संहार कर गीदड़ों, योगिनियों और कालिकाओंके समूहोंको तृप्त करेंगे। वे डंकेकी चोट विभीषणको राज्य देकर उसपर अनुग्रह करेंगे। उस समय आकाशमें बाजे बजने लगेंगे और देवतालोग प्रेमसे पुष्ट हो जायँगे। जब युद्ध-क्षेत्रमें श्रीरघुनाथजी कुपित होंगे, तब भला रावण क्या चीज है, बेचारा मेघनाद भी किस गिनतीमें है और कीट-तुल्य कुम्भकर्ण भी क्या है?॥ २॥

बिनय-सनेह सों कहति सीय त्रिजटासों,
पाए कछु समाचार आरजसुवनके।
पाए जू, बँधायो सेतु, उतरे भानुकुलकेतु,
आए देखि-देखि दूत दारुन दुवनके॥
बदन मलीन, बलहीन, दीन देखि, मानो
मिटे घटे तमीचर-तिमिर भुवनके।
लोकपति-कोक-सोक मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित-उवनके॥

श्रीजानकीजी विनय और प्रेमपूर्वक त्रिजटासे कहती हैं कि 'क्या आर्यपुत्रके कोई समाचार मिले?' त्रिजटा बोली—हाँ जी, पाये हैं; भानुकुलकेतु (श्रीरामचन्द्र) समुद्रपर पुल बाँधकर इस पार उतर आये। घोर राक्षस (रावण) के दूत यह सब देख-देखकर आये हैं, उन लोगोंके मुख मलिन हो गये हैं और वे बलहीन तथा दीन हो गये हैं। मानो चौदहों भुवनका राक्षसरूपी

अन्धकार मिटना और घटना चाहता है, इन्द्रादि लोकपालरूप चक्रवाकोंकी शोकनिवृत्ति और वानरसेनारूप मुँदे हुए कमलोंकी प्रफुल्लताके लिये श्रीरामरूप सूर्यके उदित होनेमें केवल दो ही दण्ड (घड़ी) काल रह गया है॥ ३॥

झूलना

सुभुजु मारीचु खरु त्रिसिरु दूषनु बालि,
दलत जेहिं दूसरो सरु न साँध्यो।
आनि परबाम बिधि बाम तेहि रामसों,
सकत संग्रामु दसकंधु काँध्यो॥
समुझि तुलसीस-कपि-कर्म घर-घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ बंक, लंकेस नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥

जिसने सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा और वालिके मारनेमें दूसरा बाण संधान नहीं किया, उन्हीं रघुनाथजीसे विधिकी वामताके कारण परस्त्रीको ले आकर क्या रावण युद्ध ठान सकता है? तुलसीदासके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके और हनुमान्‌जीके कार्योंका स्मरण करके घर-घर (रावणकी) बदनामी होती रहती है तथा समुद्र बाँधनेका समाचार सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये हैं। (लङ्का-जैसे) विकट गढ़में निवास करते और रावण-जैसे (दुर्दान्त) शासकके रहते हुए भी लङ्कामें कोई पकाया हुआ भात नहीं खाता [क्योंकि उन्हें हर समय आग लगनेका भय बना रहता है]॥ ४॥

'बिस्वजयी' भृगुनायक-से बिनु हाथ भए हनि हाथ हजारी।
बातुल मातुलकी न सुनी सिख का 'तुलसी' कपि लंक न जारी॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिलें, फिरि बूझिहै, को गज, कौन गजारी।
कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन-बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी॥

[लङ्कापुरीमें रहनेवाले नर-नारी कहते हैं—] हजार भुजाओंवाले (सहस्रार्जुन) को मारनेवाले परशुराम-जैसे विश्वविजयी वीर भी (इन रघुनाथजीके सामने) निहत्थे हो गये। देखो, इस पागल रावणने अपने मामा (माल्यवान्) की भी शिक्षा नहीं मानी; तो तुलसीदासजी कहते हैं—क्या हनुमान्‌जीने लङ्काको नहीं

जलाया? यदि यह श्रीरघुनाथजीसे मेल कर ले तो अब भी अच्छा है। नहीं तो फिर मालूम हो जायगा कि कौन हाथी है और कौन सिंह है? इस (रावण) की कीर्ति बड़ी है, करनी बड़ी है और जनतामें बात भी बड़ी है, परंतु यह है बड़ा बजारी* (बकवादी)॥ ५॥

समुद्रोत्तरण

जब पाहन भे बनबाहन-से, उतरे बनरा, 'जय राम' रढ़ैं।
'तुलसी' लिएँ सैल-सिला सब सोहत, सागरु ज्यों बल बारि बढ़ैं॥
करि कोपु करैं रघुबीरको आयसु, कौतुक हीं गढ़ कूदि चढ़ैं।
चतुरंग चमू पलमें दलि कै रन रावन-राढ़-सुहाड़ गढ़ैं॥

जब [सेतु बाँधते समय] पत्थर नावके समान हो गये, तब वानरलोग समुद्रपार उतर आये और 'रामचन्द्रजीकी जय' कहने लगे। गोसाईंजी कहते हैं—वे सब हाथोंमें पर्वत और शिलाएँ लिये ऐसे सुशोभित हो रहे हैं,जैसे ज्वार आनेपर समुद्र सुशोभित होता है। वे बड़ा क्रोध करके श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करते हैं, खेलहीसे कूदकर लङ्का-गढ़पर चढ़ गये हैं, मानो एक ही पलमें युद्धमें चतुरंगिणी सेनाको नष्ट कर दुष्ट रावणकी सुदृढ़ हड्डियोंकी मरम्मत कर डालेंगे॥ ६॥

बिपुल बिसाल बिकराल कपि-भालु, मानो
कालु बहु बेष धरें, धाए किएँ करषा।
लिए सिला-सैल-साल, ताल औ तमाल तोरि
तोपैं तोयनिधि, सुरको समाजु हरषा॥
डगे दिगकुंजर, कमठु कोलु कलमले,
डोले धराधर धारि, धराधरु धरषा।
'तुलसी' तमकि चलैं, राघौकी सपथ करैं,
को करै अटक कपिकटक अमरषा॥

बहुत-से बड़े-बड़े भयंकर वानर और भालु इस प्रकार दौड़े मानो अनेक वेष धारण किये काल ही क्रोधित हो दौड़ रहा हो। कोई शिला, कोई पर्वत, कोई

* बजारीका अर्थ दलाल या मिथ्यावादी भी हो सकता है।

शाल, कोई ताड़ और कोई तमालके वृक्ष तोड़ लाये और समुद्रको तोपने लगे, यह देखकर देवसमाज हर्षित हुआ। दिशाओंके हाथी डोलने लगे, कच्छप और वाराह कलमला गये, पहाड़ काँपने लगे और शेष दब गये। गोसाईंजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई देकर सब वानर तमककर चलते हैं। भला ऐसा कौन है जो उस क्रोधभरे कपिकटकको रोक सके?॥ ७॥

आए सुकु, सारनु, बोलाए ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम हीं।
'महाबली बानर बिसाल भालु काल-से
कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ महीं'॥
हँस्यो दसकंधु रघुनाथको प्रतापु सुनि,
'तुलसी' दुरावै मुखु, सूखत सहम हीं।
रामके बिरोधें बुरो बिधि-हरि-हरहू को,
सबको भलो है राजा रामके रहम हीं॥

शुक और सारण [वानर-सेना देखकर] लौट आये हैं। उनके शरीर कपिकटकका ख्याल करते ही पुलकित हो गये। बुलाकर पूछनेपर वे कहने लगे—'महाबलवान् वानर और विशाल भालु कालके समान भयंकर हैं। वे न जाने कहाँ रहते हैं और पृथ्वीमें कहाँ समायेंगे।' श्रीरामचन्द्रका प्रताप सुनकर रावण हँसा। गोसाईंजी कहते हैं—डरसे उसका मुँह सूख गया है, (किंतु वह) उसे (हँसकर) छिपाता है। श्रीरामचन्द्रजीसे वैर करनेसे तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका भी अहित होता है। सबकी भलाई तो महाराज रामकी कृपामें ही है॥ ८॥

अंगदजीका दूतत्व

'आयो ! आयो ! आयो सोई बानरु बहोरि !' भयो
सोरु चहुँ ओर लंकाँ आएँ जुबराजकें।
एक काढ़ैं सौंज, एक धौंज करैं, 'कहा ह्वै है,
पोच भई', महासोचु सुभटसमाजकें॥
गाज्यो कपिराजु रघुराजकी सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाजकें।

सहमि सुखात बातजातकी सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात, तुलसी झपेटें बाजकें॥

लङ्कामें युवराज (अङ्गदजी) के आनेपर वहाँ चारों ओर यही शोर हो गया कि वही (लङ्का जलानेवाला) वानर फिर आ गया, वही वानर फिर आ गया। कोई असबाब निकालने लगे और कोई दौड़ने और कहने लगे कि 'भाई ! बड़ा बुरा हुआ, न जाने अब क्या होगा ?' इस प्रकार वीरसमाजमें बड़ी चिन्ता हो गयी। जब कपिराज (अङ्गद) श्रीरामचन्द्रजीकी दोहाई देकर गरजे तो राक्षसोंने कान मूँद लिये, मानो बिजली कड़की हो। वे लोग हनुमान्‌जीको स्मरणकर डरके मारे सूख गये और ऐसे छिपने लगे जैसे बाजके झपटनेपर लवा पक्षी छिप जाता है॥ ९॥

तुलसीस बल रघुबीरजू कें बालिसुतु
वाहि न गनत, बात कहत करेरी-सी।
'बकसीस ईसजू की खीस होत देखिअत,
रिस काहें लागति, कहत हौं मैं तेरी-सी॥
चढ़ि गढ़-मढ़ दृढ़, कोटकें कँगूरें, कोपि
नेकु धका देहैं, ढैहैं ढेलनकी ढेरी-सी।
सुनु दसमाथ! नाथ-साथके हमारे कपि
हाथ लंका लाइहैं तौ रहेगी हथेरी-सी॥

तुलसीदासजीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके बलपर वालिपुत्र अङ्गद उस (रावण) को कुछ नहीं समझते और कड़ी-कड़ी बातें कहते हैं कि 'आज शिवजीकी दी हुई सम्पत्ति नष्ट होती दिखायी देती है, इससे तुम क्रोधित क्यों होते हो? मैं तो तुम्हारे हितकी ही बात कहता हूँ। हे रावण! सुनो, हमारे स्वामीके साथके बंदर जब गढ़के मकानोंपर और कोटके सुदृढ़ कँगूरोंपर चढ़ जायँगे और क्रोधित होकर जरा भी धक्का देंगे तो सब ढेलोंकी ढेरीके समान ढह जायँगे और उन्होंने लङ्कामें हाथ डाला तो वह हथेलीके समान सपाट (चौपट) हो जायगी'॥ १०॥

'दूषनु, बिराधु, खरु, त्रिसिरा, कबंधु बधे
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुकु है कालिको।
एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो सो,
तोहू है बिदित बलु महाबली बालिको॥

'तुलसी' कहत हित मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फलु पैहै तू कुचालिको।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तोसे गनै घालि को॥

देखो, उन्होंने दूषण, विराध, खर, त्रिशिरा और कबन्धको मारा, बड़े विशाल ताड़ोंका भी (एक ही बाणसे) छेदन किया—ये सब उनके कलके ही कौतुक हैं। जिस महाबलशाली वालिका बल तुझे भी विदित है; वह बाँका वीर भी उनके एक ही बाणके अधीन हो गया। हम तेरे हितकी बात कहते हैं, परंतु तू जरा भी भय नहीं मानता; सो मेरा क्या जायगा, तू ही अपनी कुचालका फल पावेगा। जो वीररूपी गजराजोंके लिये सिंहके समान हैं, उन कुठारपाणि परशुरामजीने भी जिनसे हार मान ली, अरे नीच ! उनके सामने तेरी क्या चल सकती है ? तेरे-जैसोंको पासंगके बराबर भी कौन गिनता है ?॥ ११॥

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ बिरोधु न कीजिए बौरे।
बालि बली, खरु, दूषनु और अनेक गिरे जे-जे भीतिमें दौरे॥
ऐसिअ हाल भई तोहि धौं, न तु लै मिलु सीय चहै सुखु जौं रे।
रामकें रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति, संकरु सौ रे॥

अरे दसकंध ! मैं तुझसे कहता हूँ, तू भूलकर भी रघुनाथजीसे विरोध न करना। महाबली वालि और खर-दूषणादि जो वीर दीवारपर दौड़े, वे ही गिर पड़े। तेरी भी ऐसी ही दशा होनेवाली है; नहीं तो, यदि सुख चाहता है तो जानकीजीको लेकर मिल। अरे, श्रीरामचन्द्रके क्रोधसे सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी रक्षा नहीं कर सकते॥ १२॥

तूँ रजनीचरनाथ महा, रघुनाथके सेवकको जनु हौं हौं।
बलवान है स्वानु गलीं अपनीं, तोहि लाज न गालु बजावत सौहौं॥
बीस भुजा, दस सीस हरौं, न डरौं, प्रभु-आयसु-भंग तें जौं हौं।
खेतमें केहरि ज्यों गजराज दलौं दल, बालिको बालकु तौ हौं॥

तू निशाचरोंका महाराज है और मैं रघुनाथजीके सेवक सुग्रीवका सेवक हूँ। अपनी गलीमें तो कुत्ता भी बलवान् होता है। तुमको मेरे सामने गाल बजाते लाज नहीं आती। यदि मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाभङ्गसे न डरता तो तुम्हारी बीसों भुजाओं और दसों सिरोंको उतार लेता। जैसे सिंह गजराजका दलन करता है,

वैसे ही यदि युद्धक्षेत्रमें मैं तुम्हारी सेनाका दलन करूँ तभी तुम मुझे वालिका बालक जानना॥ १३॥

कोसलराजके काज हौं आजु त्रिकूटु उपारि, लै बारिधि बोरौं।
महा भुजदंड द्वै अंडकटाह चपेटकीं चोट चटाक दै फोरौं॥
आयस भंगतें जौं न डरौं, सब मीजि सभासद श्रोनित घोरौं।
बालिको बालकु जौं, 'तुलसी' दसहू मुखके रनमें रद तोरौं॥

'कोसलराज श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये आज मैं त्रिकूट पर्वतको (जिसपर लङ्का बसी हुई है) उखाड़कर समुद्रमें डुबा दे सकता हूँ, लङ्का तो क्या,सारे ब्रह्माण्डको अपने दोनों प्रचण्ड भुजदण्डोंकी चपेटसे दबाकर चटाकसे फोड़ दे सकता हूँ; यदि मैं आज्ञाभङ्गसे न डरता तो तुम्हारे सब सभासदोंको मसलकर लोहूमें सान देता। मैं यदि वालिका बालक हूँ तो रणभूमिमें तुम्हारे दसों मुँहके दाँतोंको तोड़ डालूँगा'॥ १४॥

अति कोपसों रोप्यो है पाउ सभाँ, सब लंक ससंकित, सोरु मचा।
तमके घननाद-से बीर प्रचारि कै, हारि निसाचर-सैनु पचा॥
न टरै पगु मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
'तुलसी' सब सूर सराहत हैं,जगमें बलसालि है बालि-बचा॥

तब अङ्गदजीने अत्यन्त क्रुद्ध हो सभामें पाँव रोप दिया। इससे समस्त लङ्का सशङ्कित हो गयी और उसमें सब ओर शोर मच गया। मेघनाद-जैसे वीर तमक और ललकारकर उठे और हारकर बैठ गये। सारी राक्षसी सेना भी पच मरी, परंतु पैर न टला। वह सुमेरुपर्वतसे भी भारी हो गया, मानो (उसे) ब्रह्माने पृथ्वीके साथ ही रचा हो ! गोसाईंजी कहते हैं—सब वीर प्रशंसा करने लगे कि संसारमें एकमात्र बलशाली वालिपुत्र अङ्गद ही हैं॥ १५॥

रोप्यो पाउ पैज कै, बिचारि रघुबीर बलु,
लागे भट समिटि, न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीरु-धरनीं,धरनीधर धसकत,
धराधरु धीर भारु सहि न सकतु है॥
महाबली बालिकें दबत दलकति भूमि,
'तुलसी' उछलि सिंधु, मेरु मसकतु है।

कमठ कठिन पीठि घट्ठा पर्‌यो मंदरको,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥

अङ्गदजीने श्रीरामचन्द्रजीके बलको विचारकर प्रणपूर्वक पैर रोपा। वीरगण जुटकर उसे उठाने लगे, परंतु वह टस-से-मस नहीं होता। पृथ्वीतकने धैर्य छोड़ दिया (जो धैर्यके लिये प्रसिद्ध है), पर्वत धसकने लगे, परम धैर्यवान् शेषजी भी उनका भार नहीं सह सके। वालिके पुत्र महाबली अङ्गदजीके दबानेसे पृथ्वी काँप गयी, समुद्र उछल पड़ा और मेरु पर्वत फटने लगा। कमठके कठोर पीठमें जो मन्दराचलका घट्ठा पड़ा है, वही काम आया (अर्थात् उससे वेदना कम हुई) तो भी (भारके कारण) कलेजा तो कसकने ही लगा॥ १६॥

रावण और मन्दोदरी

झूलना

कनकगिरिसृंग चढ़ि देखि मर्कटकटकु,
बदत मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज-मत्तगजराज-रनकेसरी,
परसुधर गर्बु जेहि देखि बीता॥
दास तुलसी समरसूर कोसलधनी,
ख्याल हीं बालि बलसालि जीता।
रे कंत! तृन दंत गहि 'सरन श्रीरामु' कहि,
अजहुँ एहि भाँति लै सौंपु सीता॥

सुवर्णगिरिके शिखरपर चढ़कर वानरी सेनाको देखनेपर मन्दोदरी अत्यन्त भयभीत होकर कहने लगी—'सहस्रबाहुरूपी मत्त गजराजके लिये रणमें केसरीके समान परशुरामजीका गर्व जिनको देखकर जाता रहा, वे श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें बड़े ही प्रबल हैं। देखो, उन्होंने खेलहीमें बलशाली वालिको जीत लिया। हे कन्त ! तुम दाँतोंमें तिनका दबाकर 'मैं श्रीरामचन्द्रजीकी शरण हूँ' ऐसा कहते हुए अब भी जानकीको ले जाकर सौंप दो'॥ १७॥

रे नीच! मारीचु बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचापु सुखु सबहि दीन्ह्यो।
सहस दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
पैठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥

मैं जो कहौं, कंत! सुनु मंतु, भगवंतसों
बिमुख ह्वै बालि फलु कौन लीन्ह्यो।
बीस भुज, दस सीस खीस गए तबहिं जब,
ईसके ईससों बैरु कीन्ह्यो॥

'अरे नीच ! जिसने मारीचको विचलित कर (अर्थात् बिना फलके बाणसे समुद्रके पार फेंककर) ताड़काको मार डाला, शिवजीके धनुषको तोड़कर सबको सुख दिया और फिर, चौदह हजार राक्षसोंसहित खर-दूषणको यमलोक भेज दिया, उसे तूने तब भी नहीं पहचाना।' हे स्वामिन् ! मैं जो सलाह देती हूँ, सो सुनो। भगवान्‌से विमुख होकर भला वालिने भी कौन फल पाया ? तुम्हारे बीसों बाहु और दसों सिर तो तभी नष्ट हो गये जब तुमने शिवजीके स्वामीसे वैर किया॥ १८॥

बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किये,
कंत! भगवंतु तैं तउ न चीन्हे।
बिपुल बिकराल भट भालु-कपि काल-से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें॥
आइगो कोसलाधीसु तुलसीस जेंहि
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस बकसीस जनि खीस करु, ईस! सुनु,
अजहुँ कुलकुसल बैदेहि दीन्हें॥

'कलकी ही बात है, उन्होंने वालिको मार समुद्रमें पत्थरोंकी नाव बना दिया।' हे स्वामी ! तो भी तुमने भगवान्‌को नहीं पहचाना। जिनके साथ कालके समान भयंकर बहुत-से रीछ और वानर वीर वृक्ष तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतशृङ्ग लिये हुए हैं तथा जो राजछत्र गिरानेके व्याजसे तुम्हारे दसों सिर छेदन कर चुके हैं, वे तुलसीदासके प्रभु कोसलेश्वर भगवान् राम आ गये हैं। हे स्वामिन् ! सुनिये, शिवजीकी इस देनको नष्ट न कीजिये। जानकीजीके दे देनेसे अब भी कुलकी कुशल हो सकती है॥ १९॥

सैनके कपिन को को गनै, अर्बुदै
महाबलबीर हनुमान जानी।
भूलिहै दस दिसा, सीस पुनि डोलिहैं,
कोपि रघुनाथु जब बान तानी॥

बालिहूँ गर्बु जिय माहिं ऐसो कियो,
मारि दहपट दियो जमकी घानीं।
कहति मंदोदरी, सुनहि रावन! मतो,
बेगि लै देहि बैदेहि रानी॥

'(उनकी) सेनाके वानरोंकी गणना कौन कर सकता है? उन्हें अरबों महाबली वीर हनुमान् ही जानो। जब श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित होकर बाण चढ़ायेंगे तब तुम दसों दिशाओंको भूल जाओगे और तुम्हारे मस्तक डोलने लगेंगे। वालिने भी तो मनमें ऐसा ही अभिमान किया था, किंतु इन्होंने उसे मार—चौपटकर यमराजकी घानीमें दे दिया।' मन्दोदरी कहती है—'हे रावण ! मेरी सलाह सुनो। शीघ्र ही महारानी जानकीजीको ले जाकर दे दो'॥ २०॥

गहनु उज्जारि, पुरु जारि, सुतु मारि तव,
कुसल गो कीसु बर बैरि जाको।
दूसरो दूतु पनु रोपि कोपेउ सभाँ,
खर्ब कियो सर्बको, गर्बु थाको॥
दासु तुलसी सभय बदत मयनंदिनी,
मंदमति कंत, सुनु मंतु म्हाको।
तौलौं मिलु बेगि, नहि जौलौं रन रोष भयो
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको॥

'तुम्हारा प्रबल शत्रु जिसका दूत एक वानर तुम्हारे वनको उजाड़ नगरको जला और पुत्रको मारकर कुशलपूर्वक चला गया। और दूसरे दूतने जब प्रण करके सभामें क्रोध किया तो सबको नीचा दिखा दिया और गर्व चूर्ण कर दिया। गोसाईंजी कहते हैं, मन्दोदरी भयभीत होकर कहने लगी—'हे मन्दमति स्वामी ! मेरी सलाह सुनिये। जबतक बड़े यशस्वी वीरवर दशरथनन्दन रणमें क्रोधित नहीं होते, तबतक तुम शीघ्र उनसे मिलो॥ २१॥

काननु उजारि, अच्छु मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगरु प्रजार्‌यो, सो बिलोक्यो बलु कीसको।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधानमंडलीमें कपि
कोपि रोप्यो पाउ, सो प्रभाउ तुलसीसको॥
कंत! सुनु मंतु कुल-अंतु किएँ अंत हानि,
हातो कीजै हीयतें भरोसो भुज बीसको।

तौलौं मिलु बेगि, जौलौं चापु न चढ़ायो राम,
रोषि बानु काढ्यो न दलैया दससीसको॥

'तुमने एक वानरका बल तो अपनी आँखोंसे देख लिया; उसने (अकेले ही) वनको उजाड़ डाला, अक्षकुमारको मारकर उसकी सेनाको चूर्ण कर दिया और नगरमें आग लगा दी। तुम्हारे रहते हुए ही (दूसरे) वानर (अङ्गद) ने राक्षस-मण्डलीमें क्रोध करके पैर रोप दिया, यह (जो किसीसे नहीं हिला) तुलसीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका ही प्रभाव था। हे नाथ! हमारी सम्मति सुनो, कुलके नाशसे अन्तत: हानि ही है। अत: अब अपने चित्तसे अपनी बीस भुजाओंका भरोसा त्याग दो और जबतक श्रीरामचन्द्र धनुष न चढ़ावें और क्रोधित होकर दसों मस्तकोंको छेदन करनेवाला बाण न निकालें, तबतक (शीघ्र ही) उनसे मिल जाओ॥ २२॥

'पवनको पूतु देख्यो दूतु बीर बाँकुरो, जो
बंक गढ़ु लंक-सो ढकाँ ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालिको सो काल्हि दापु दलि कोपि,
रोप्यो पाउ चपरि, चमूको चाउ चाहिगो॥
सोई रघुनाथु कपि साथ पाथनाथु बाँधि,
आयो नाथ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो।
'तुलसी' गरबु तजि मिलिबेको साजु सजि,
देहि सिय, न तौ पिय! पाइमाल जाहिगो॥

'(उनके) दूत बाँके वीर पवनपुत्रको तुमने देखा जो लङ्का-जैसे दुर्गम गढ़को धक्केसे ढकेलकर ही ढाह गया। बलशाली वालिका पुत्र (अङ्गद) तो कल ही बड़ी फुर्तीसे क्रोधपूर्वक चरण रोपकर तथा तुम्हारा दर्प चूर्णकर तुम्हारी सेनाका उत्साह देख गया। अब वे ही श्रीरघुनाथजी वानरोंको साथ लिये समुद्रको बाँधकर आये हैं, सो हे नाथ! यदि इस समय तुम भागोगे तो तुम्हें खरोचकर धूल फाँकनी पड़ेगी। इसलिये अहङ्कारको छोड़कर और मिलनेकी तैयारी कर जानकीजीको दे दो; नहीं तो हे प्रिय! तुम बरबाद हो जाओगे॥ २३॥

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार
केसरीकुमारु सो अदंड-कैसो डाँड़िगो।
बाटिका उजारि, अच्छु, रच्छकनि मारि भट
भारी भारी राउरेके चाउर-से काँड़िगो॥

'तुलसी' तिहारें बिद्यमान जुबराज आजु
कोपि पाउ रोपि, सब छूछे कै कै छाँड़िगो।
कहेकी न लाज, पिय ! आजहूँ न आए बाज,
सहित समाज गढ़ु राँड़-कैसो भाँड़िगो॥

'देखो, जिसे अपार समुद्रको पार करते देरी नहीं लगी, वह केसरीकुमार (हनुमान् यहाँ आकर) अदण्ड्यके समान तुम्हें दण्ड दे गया। उसने बागको उजाड़ तथा अक्षकुमार एवं अन्य रक्षकोंको मारकर तुम्हारे बड़े-बड़े वीरोंको चावलकी तरह कूट गया और आज तुम्हारे रहते-रहते अङ्गद क्रोधपूर्वक अपने पैरको रोप सबको थोथे (बलहीन) करके छोड़ गया। हे प्रिय ! कहनेकी तुमको लाज नहीं है; तुम अब भी बाज नहीं आते। आज अङ्गद सारे गढ़को समाजसहित राँड़के घरके समान घूम-घूमकर देख गया॥ २४॥

जाके रोष-दुसह-त्रिदोष-दाह दूरि कीन्हे,
पैअत न छत्री-खोज खोजत खलकमें।
माहिषमतीको नाथ साहसी सहस बाहु,
समर-समर्थ नाथ! हेरिए हलकमें॥
सहित समाज महाराज सो जहाजराजु
बूड़ि गयो जाके बल-बारिधि-छलकमें।
टूटत पिनाककें मनाक बाम रामसे, ते
नाक बिनु भए भृगुनायकु पलकमें॥

'जिसके क्रोधरूपी दुःसह त्रिदोषके दाहद्वारा नष्ट कर दिये जानेसे संसारमें खोजनेपर भी क्षत्रियोंका पता नहीं लगता था, हे नाथ ! जरा हृदयमें सोचकर देखिये, माहिष्मतीपुरीका राजा साहसी सहस्रबाहु रणमें कैसा समर्थ था। किंतु हे महाराज! वह सहस्रबाहुरूपी महान् जहाज अपने समाजसहित जिस परशुरामके बलरूपी समुद्रकी हिलोरमें ही डूब गया, वही परशुरामजी धनुष टूटनेपर श्रीरामचन्द्रसे कुछ टेढ़े होते ही क्षणभरमें बिना नाक (प्रतिष्ठा) के हो गये अथवा उनकी स्वर्गप्राप्ति रुक गयी*'॥ २५॥

---

* श्रीवाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि भगवान् श्रीरामने परशुरामजीके दिये हुए धनुषमें बाण संधान करते समय कहा कि यह बाण अमोघ है, इसके द्वारा आपका वध तो

कीन्ही छोनी छत्री बिनु छोनिप-छपनिहार,
कठिन कुठार पानि बीर-बानि जानि कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनुहाई ह्वैहै मन अनुमानि कै॥
नाकमें पिनाक मिस बामता बिलोकि राम
रोक्यो परलोक लोक भारी भ्रमु भानि कै।
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय!
मिलिए पै नाथ! रघुनाथु पहिचानि कै॥

ये राजाओंका संहार करनेवाले हैं तथा पृथ्वीको (कई बार) निःक्षत्रिय कर चुके हैं,इनके हाथमें कठिन कुठार रहता है और इनका वीरोंका-सा स्वभाव है, यह जानकर भगवान् श्रीरामने राजाओं तथा लोकपालोंपर अत्यन्त कृपापरवश हो मनमें यह अनुमान किया कि जिस समय इनका परशुरामजीके साथ धनुषयुद्ध होगा (उस समय इन लोगोंकी क्या दशा होगी) और यह देखकर कि पिनाकके बहानेको लेकर इनकी नाक सिकुड़ गयी है, परशुरामजीके परलोक (स्वर्गप्राप्ति) को रोक दिया और संसारके भारी भ्रमको (कि उनका सामना करनेवाला संसारमें कोई नहीं है) मिटा दिया। हे प्रिय ! उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीको (ईश्वर) जानकर अपने दसों सिर पृथ्वीपर रखकर और बीसों हाथ जोड़कर मिलो॥ २६॥

कह्यो मतु मातुल, बिभीषनहूँ बार-बार,
आँचरु पसार पिय! पायँ लै-लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर नाथ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी।
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीरकें न पूरी काहूकी परी।
कंत बीस लोयन बिलोकिए कुमंतफलु,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़की-सी झोपरी॥

मामाजी (मारीच) ने सलाह दी; विभीषणने भी बार-बार कहा और

होगा नहीं, क्योंकि आप ब्राह्मण हैं, किंतु आप अपने तपोबलसे जिन दिव्यलोकोंको प्राप्त करनेवाले थे, उन लोकोंकी प्राप्ति अब आपको न हो सकेगी।

हे प्रिय! मैं भी अञ्चल पसारकर बार-बार तुम्हारे पैरों पड़ी [और भगवान्से विरोध न करनेके लिये प्रार्थना की]। हे नाथ ! जनकपुरमें परशुरामजीकी क्या गति हुई सो प्रकट ही है। [अतः यह सोचकर कि 'पहले उनसे वैर ठाना, उनकी शरण कैसे जाऊँ' आपको सङ्कोच न करना चाहिये] उन्होंने समयपर जैसा अवसर आ पड़ा वैसी ही चतुराई कर ली। (अर्थात् रामचन्द्रजीके शरण हो गये।) जयन्त, विराध, खर, दूषण, कबन्ध और वालि—किसीका भी श्रीरामचन्द्रजीसे वैर करके पूरा नहीं पड़ा। हे स्वामिन् ! अपने कुविचारोंका फल बीसों आँखोंसे देख लो कि कपिने खेलहीमें लङ्काको किसी अनाथ बेवाकी झोंपड़ीके समान जला दिया॥ २७॥

राम सों सामु किएँ नितु है हितु, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोगु न ठाहरु, नाठे॥
नाथ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बातके साँठें।
भाइ बिभीषनु जाइ मिल्यो, प्रभु आइ परे सुनि सायर काँठें॥

श्रीरामचन्द्रसे मेल करनेमें ही सदा भलाई है। ऐसे सुगम कार्यको कठिन न बनाइये। हे प्रिय! मैं अपनी समझ कहती हूँ। इसे भलीभाँति समझ लीजिये कि यह स्थान युद्ध करनेका नहीं, किंतु युद्धसे हटनेका ही है। हे नाथ! आपने भृगुनाथ (परशुरामजी) की भी कथा सुन ही ली। बलवान् वालि बातके पीछे बरबाद हो गये। आपका भाई विभीषण भी (उनसे) जा मिला। हे स्वामिन्! सुनती हूँ, अब उन्होंने समुद्रके किनारे पहुँचकर पड़ाव डाल दिया है॥ २८॥

पालिबे को कपि-भालु-चमू जम काल करालहुको पहरी है।
लंक-से बंक महा गढ़ दुर्गम ढाहिबे-दाहिबेको कहरी है॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीरको सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ! भलो रघुनाथ मिलें रजनीचर-सेन हिएँ हहरी है॥

हे नाथ ! वायुपुत्र (हनुमान्) वानर और भालुओंकी सेनाकी रक्षाके लिये यम और कराल कालकी भी चौकसी करनेवाला है, वह लङ्का-जैसे महाविकट और दुर्गम गढ़को ढाहने और जलानेमें बड़ा उत्पाती है। निशाचरोंकी सेनारूप तीतरोंके समूहका नाश करनेके लिये वह बड़ा भारी बाज है। हे नाथ ! अब रघुनाथजीसे मिलनेहीमें भला है, निशाचरोंकी सेना हृदयमें थर्रा गयी है॥ २९॥

राक्षस-वानर-संग्राम

रोष्यो रन रावनु, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाजकी।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहनु जोगु रातिचरराजकी॥
तुलसी बिलोकि कपि-भालु किलकत
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाजकी।
रामरुख निरखि हरष्यो हियँ हनूमानु,
मानो खेलवार खोली सीसताज बाजकी॥

तब रावणने क्रोधित होकर युद्धके लिये बड़े यशस्वी वीरोंको बुलाया, जो युद्धकी तैयारीकी सारी रीति जानते थे। चतुरङ्गिणी सेनाने प्रस्थान किया, बड़े तपाकसे नगाड़े बजने लगे, उस समय राक्षसराज (रावण) की सेना सराहनेयोग्य थी। गोसाईंजी कहते हैं, उस सेनाको देखकर वानर और भालु किलकारी मारने लगे; जैसे कंगाल सुन्दर अन्नकी परोसी हुई पत्तल देखकर ललचाते हैं। श्रीरामचन्द्रजीका इशारा पाकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए, मानो खिलाड़ी (शिकारी) ने बाजकी टोपी खोल दी (अर्थात् उसे शिकारके लिये स्वतन्त्रता दे दी)॥ ३०॥

साजि कै सनाह-गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीरके।
इहाँ भालु-बंदर बिसाल मेरु-मंदर-से
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधितीरके॥
तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज निज भट भीरके।
रुंडनके झुंड झूमि-झूमि झुकरे-से नाचैं,
समर सुमार सूर मारैं रघुबीरके॥

धीर रावणके महाबली वीरोंका दल कवच और गजगाह (हाथियोंकी झूल) सजाकर उत्साहपूर्वक चला। यहाँ मेरु और मन्दर पर्वतके समान विशाल वानर और भालुओंने समुद्रके किनारेके पर्वत और शालवृक्ष उखाड़ लिये। गोसाईंजी कहते हैं—फिर (दोनों दल) क्रोधित हो तमककर एक-दूसरेकी ओर ताककर भारी युद्धमें भिड़ गये। सेनापतिलोग अपने-अपने दलके वीरोंकी सराहना

करने लगे। झुंड-के-झुंड रुंड (बिना सिरके धड़) झूम-झूमकर झुकरे-से (परस्पर क्रुद्ध हुए-से) नाचने लगे और श्रीरामचन्द्रके वीर युद्धमें सुमार (कठिन मार) मारने लगे॥ ३१॥

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हें मनमें, कबहूँ न भए रनमें तन ढीले॥
तुलसी लखि कै गज केहरि ज्यों झपटे, पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥

जिनके मनमें बड़ा गर्व था और रणमें जिनका शरीर कभी ढीला नहीं हुआ था; ऐसे चुने हुए छबीले छैल हरिणके समान तेज भागनेवाले एवं सुन्दर रंगवाले घोड़ोंको साजकर सवार हुए। गोसाईंजी कहते हैं कि जैसे हाथीको देखकर सिंह झपटता है, उसी प्रकार हनुमान्‌जी लीलाहीसे सब वीरोंको झपटकर पटकने लगे और वे घूम-घूमकर पृथ्वीपर गिरने तथा कराहने लगे। इस प्रकार हठीले हनुमान्‌जी ललकार-ललकारकर राक्षसोंका वध करने लगे॥ ३२॥

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरैं बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
'तुलसी' जिन्ह धाएँ धुकै धरनी, धरनीधर धौर धकान हले हैं।
ते रन-तीक्खन लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥

बड़े-बड़े सजीले वीर सुन्दर घोड़ोंको सजाकर और तीखे भाले धारणकर घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर (अथवा मिलाकर बराबर-बराबर) चले। उनकी बड़ी-बड़ी भरी हुई (मांसल) भुजाएँ और भारी शरीर हैं, वे सब प्रकार बली, विजयी और सुहावने मालूम होते हैं। गोसाईंजी कहते हैं—जिनके दौड़नेसे पृथ्वी काँपने लगती है और कठिन धक्कोंसे पर्वत डोलने लगते हैं, ऐसे रणमें तीक्ष्ण लाखों वीरोंको युद्धभूमिमें लक्ष्मणजीने इस प्रकार पराभव करके नष्ट कर दिया जैसे कोई दानी पुरुष [बहुत-सी सम्पत्ति दान कर] दरिद्रताको नष्ट कर देता है॥ ३३॥

गहि मंदर बंदर-भालु चले, सो मनो उनये घन सावनके।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावनके॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैरु बढ़ावनके।
रन मारि मची उपरी-उपरा भलें बीर रघुप्पति रावनके॥

वानर और भालु पर्वतोंको लेकर इस प्रकार चले मानो सावनकी घटा घिर आयी हो। गोसाईंजी कहते हैं कि उधर देवताओंका नाश करनेवाले (रावण) के प्रचण्ड वीर और भी झुंड-के-झुंड क्रुद्ध होकर झपटने लगे। हठपूर्वक वैर बढ़ानेवाले (रावणके) बहुत-से यशस्वी वीर जो मैदानमें अड़े थे, वे एक-दूसरेसे भिड़ गये और टालनेसे भी नहीं टलते थे। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र और रावणके वीरोंमें ऊपरा-ऊपरी करके युद्धस्थलमें खूब लड़ाई छिड़ गयी॥ ३४॥

सर-तोमर सेलसमूह पँवारत, मारत बीर निसाचरके।
इत तें तरु-ताल-तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधरके॥
'तुलसी' करि केहरिनादु भिरे भट, खग्ग खगे, खपुआ खरके।
नख-दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंडसों मुंड परे झरकैं॥

राक्षस (रावण)के वीर तीर, बरछी और सेलोंके समूह फेंक-फेंककर मारते हैं और इधरसे ताड़ और तमालके वृक्ष तथा पर्वतोंके बड़े-बड़े पैने टुकड़े चलते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि सब वीर सिंहनाद करके भिड़ गये। उनमें जो शूर थे, वे तो तलवारोंके बीचमें धँस गये और कायर खिसक गये। (वानरगण) नख और दाँतोंसे भुजदण्डोंको विदीर्ण करते हैं और (भूमिपर) पड़े हुए मुण्ड एक-दूसरेका तिरस्कार करते हैं॥ ३५॥

रजनीचर-मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराजके साज लरै।
झपटै भट कोटि महीं पटकै, गरजै, रघुबीरकी सौंह करै॥
'तुलसी' उत हाँक दसाननु देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै।
बिरुझो रन मारुतको बिरुदैत, जो कालहु कालुसो बूझि परै॥

(हनुमान्‌जी) राक्षसरूपी मतवाले हाथियोंके समूहका नाश करते हुए सिंहके समान युद्ध करते हैं। (वे) झपटकर करोड़ों वीरोंको पृथ्वीपर पटककर गर्जते हैं और श्रीरामचन्द्रकी दुहाई देते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि उधरसे रावण हाँक देता है, (जिसे सुनकर रामचन्द्रजीके पक्षके) वीर अचेत हो जाते हैं— (उस हाँकको सुनकर) कौन ऐसा है जो धैर्य धारण कर सके? यशस्वी वीर वायुनन्दन युद्धभूमिमें भिड़ गये, जो इस समय कालको भी काल-से दीख पड़ते हैं॥ ३६॥

जे रजनीचर बीर बिसाल, कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रन-रोर कपीसकिसोर बड़े बरजोर परे फग पाए॥

लूम लपेटि, अकास निहारि कै, हाँकि हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात, चले नभ जात, परे भ्रमबात, न भूतल आए॥

जिन विशाल वीर निशाचरोंको विकराल समझकर कालने भी नहीं खाया, उन रणकर्कश बलवानोंको केसरीकिशोरने अपने दाँवमें पड़े पाया और उन्हें ललकारकर हठी हनुमान्‌जीने आकाशकी ओर देखते हुए पूँछमें लपेटकर फेंक दिया। उनके शरीर सूख गये और बवंडरमें पड़नेसे आकाशमें चले जा रहे हैं, लौटकर पृथ्वीपर नहीं आते॥ ३७॥

जो दससीसु महीधर ईसको बीस भुजा खुलि खेलनिहारो।
लोकप, दिग्गज, दानव, देव सबै सहमे सुनि साहसु भारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिकाँ गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाजको मारो॥

जो रावण शिवजीके पर्वत (कैलास)को बीसों भुजाओंसे उठाकर स्वच्छन्दतापूर्वक खेलनेवाला था, जिसके भारी साहसको सुनकर लोकपाल, दिक्पाल, दैत्य और देवगण सभी डर गये थे, जो बड़ा यशस्वी और बलशाली वीर था तथा जिसकी कीर्तिकथा आज भी जगत्‌में गायी जाती है, उसी रावणको हनुमान्‌जीने मुक्केसे मारा तो जैसे वज्रके प्रहारसे पर्वत गिर जाता है, उसी प्रकार गिर गया॥ ३८॥

दुर्गम दुर्ग, पहारतें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्खमें पक्खर, तिक्खन तेज, जे सूर समाजमें गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रनबाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नामु लै रामु देखावत बंधुको घूमत घायल घायँ घने हैं॥

जिनके महाप्रचण्ड भुजदण्ड दुर्ग (किले)से भी दुर्गम और पहाड़से भी विशाल हैं, जो लाखोंमें प्रबल हैं और जिनका तेज बड़ा तीक्ष्ण है तथा जो शूर-समाजमें बिजलीके समान गिने जाते हैं, उन रणबाँकुरे प्रसिद्ध पराक्रमी निशाचरोंको हठी हनुमान्‌जीने प्रचार कर मारा है और जो वीर बहुत चोट खाये हुए घूम रहे हैं, उनको श्रीरामचन्द्रजी नाम ले-लेकर अपने भाई लक्ष्मणजीको दिखला रहे हैं॥ ३९॥

हाथिन सों हाथी मारे, घोरेसों सँघारे घोरे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवानकी।

चंचल चपेट, चोट चरन, चकोट चाहें,
हहरानीं फौजैं भहरानीं जातुधानकी॥
बार-बार सेवक सराहना करत रामु,
'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजानकी।
लाँबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन! लरनि हनुमानकी॥

हाथियोंसे हाथियोंको मार डाला है, घोड़ोंसे घोड़ोंका संहार कर दिया और रथोंसे मजबूत रथको (टकराकर) तोड़ डाला। हनुमान्‌जीकी चञ्चल चपेट, लातोंकी चोट और चुटकी काटना देखकर निशाचरोंकी सेनाएँ घबड़ा गयीं और चक्कर खाकर गिरने लगीं। श्रीराम बार-बार अपने सेवककी सराहना करते हुए कहते हैं—लक्ष्मण! तनिक हनुमान्‌जीका युद्धकौशल तो देखो, उनकी लंबी पूँछ कैसी शोभायमान है, जिसमें लपेट-लपेटकर वे राक्षसवीरोंको पटक रहे हैं। गोसाईंजी भी अपने सुजान स्वामीकी (सेवक-वत्सलताकी) रीतिकी सराहना करते हैं॥ ४०॥

दबकि दबोरे एक, बारिधिमें बोरे एक,
मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥
'तुलसी' लखत, रामु, रावन, बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान, जूथप निपाते बातजात हैं॥

उन्होंने किसीको चुपकेसे दबोच डाला, किसीको समुद्रमें डुबा दिया, किसीको पृथ्वीमें गाड़ दिया, किसीको आकाशमें उड़ा दिया, किसीको हाथ पकड़कर पछाड़ दिया, किसीके पैर उखाड़ लिये, किसीको चीर-फाड़ डाला और किसीको लातसे मसलकर मार दिया। गोसाईंजी कहते हैं कि उन्हें देखकर श्रीराम और रावण, देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चण्डी मन-ही-मन प्रशंसा कर रहे हैं। हनुमान्‌जीने बड़े-बड़े यशस्वी वीर और बलवान् निशाचरसेनापतियोंको मार डाला॥ ४१॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर
धाए जातुधान, हनुमानु लियो घेरि कै।
महाबलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि, भट
जहाँ-तहाँ पटके लँगूर फेरि-फेरि कै।
मारे लात, तोरे गात, भागे जात हाहा खात,
कहैं, 'तुलसीस! राखि' रामकी सौं टेरि कै।
ठहर-ठहर, परे, कहरि-कहरि उठैं,
हहरि-हहरि हरु सिद्ध हँसे हेरि कै॥

तब जिनके भुजदण्ड बड़े उद्दण्ड हैं ऐसे बहुत-से प्रबल और प्रचण्ड राक्षसवीर दौड़े और उन्होंने हनुमान्‌जीको घेर लिया। किंतु महाबलराशि वीर हनुमान्‌जी सिंहके समान गरजकर उन वीरोंको लाङ्गूल घुमा-घुमाकर जहाँ-तहाँ पटकने लगे। उन्होंने मारे लातोंके राक्षसोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तोड़ डाले। वे गिड़गिड़ाते हुए भागे जाते हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई देकर कहते हैं कि हे तुलसीदासके स्वामी हनुमान्! हमारी रक्षा करो। वे ठौर-ठौर पड़े कराह-कराहकर उठते हैं, उन्हें देख-देखकर शिवजी और सिद्धगण ठहाका मारकर हँसने लगे॥ ४२॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह-सी।
सोई हनुमान बलवान बाँको बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चल्यो लेत थाह-सी॥
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह-सी।
देखें गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो,
बीर रघुबीरको समीरसूनु साहसी॥

जिसकी बाँकी वीरताको सुनकर वीरलोग भय खाते हैं, जिसकी लगायी हुई आँचसे आज भी लंका लाह-सी मालूम होती है, वही बाँके बानेवाले बलवान् हनुमान्‌जी निशाचरोंकी सेनाको देखकर उसकी थाह-सी लेने चले। उस समय अकम्पन (रावणका पुत्र) काँपने लगा, अतिकाय (रावणके पुत्र)का शरीर सूख गया और कुम्भकर्ण भी आकर आह-सी लेकर पड़ रहा। जैसे गजराजोंको

देखकर सिंह दौड़ता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके वीर साहसी पवनपुत्र (हनुमान्‌जी) उन्हें देखते ही गरजकर दौड़े॥ ४३॥

झूलना

मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेषु संकुचित, संकित पिनाकी॥
चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्त्रवत,
सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी॥

जो उन्मत्त वीरोंमें शिरोमणि रावणके साहसरूपी शैलशिखरको विदीर्ण करनेके लिये मानो वज्रकी टाँकी हैं, उन हनुमान्‌जीकी भयंकर ललकारको सुनकर दिक्पाल दाँतोंसे पृथ्वीको दबाकर चिक्कारने लगते हैं, कच्छप और शेषजी (भयके मारे) सिकुड़ जाते हैं और शिवजी भी संदेहमें पड़ जाते हैं, पृथ्वी तथा सुमेरु विचलित हो जाते हैं, सातों समुद्र उछलने लगते हैं, ब्रह्माजी व्याकुल तथा बधिर होकर दिशा-विदिशाओंको झाँकने लगते हैं और घर-घरमें निशाचरोंकी स्त्रियोंके गर्भपात होने लगते हैं॥ ४४॥

कौनकी हाँकपर चौंक चंडीसु, बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरग हाँके।
कौनके तेज बलसीम भट भीम-से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास-तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके॥

किसकी हाँकपर ब्रह्मा और शिवजी चौंक उठते हैं और सूर्य थकित होकर फिर (अपने रथके) घोड़ोंको हाँकते हैं? किसके तेजकी भयंकरताको देखकर

भीमसेन-जैसे बलसीम वीर भी हाथोंसे नेत्र मूँद लेते हैं ? बुद्धिमान् लोग तुलसीदासके स्वामी (हनुमान्‌जी) के यशका गान करते हुए कहते हैं कि उन्होंने अच्छे-अच्छे कीर्तिशाली वीर शत्रुओंपर धाक जमा ली। कोई बतलावे तो सही कि हनुमान्‌जीके समान बाँका वीर आकाश, मनुष्यलोक और पातालमें कहाँ है ?॥ ४५ ॥

जातुधानावली-मत्तकुंजरघटा
निरखि मृगराजु ज्यों गिरितें टूट्यो।
बिकट चटकन चोट,चरन गहि, पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सतु सबको छूट्यो॥
'दासु तुलसी' परत धरनि धरकत, झुकत
हाट-सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीरको बीर रनबाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटकु कूट्यो॥

जैसे मतवाले हाथियोंके झुंडको देखकर सिंह पर्वतपरसे उनपर टूट पड़ता है, वैसे ही राक्षसोंके समूहको देखकर हनुमान्‌जी उनपर झपट पड़े। चपतोंकी विकट चोटसे और पाँव पकड़कर पृथ्वीपर पछाड़नेसे सब वीर निःशेष हो गये और सबका बल जाता रहा। गोसाईंजी कहते हैं कि वीरोंके पृथ्वीपर गिरनेसे पृथ्वी धड़कने लगी और वीरोंको गिरते-गिरते स्यारोंने इस प्रकार लूट लिया जैसे उठती हुई पैठको लुटेरे लूट लेते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके धीर-वीर रणबाँकुरे हनुमान्‌जीने ललकार-ललकारकर सारी सेनाकी कुन्दी कर दी॥ ४६ ॥

छप्पै

कतहुँ बिटप-भूधर उपारि परसेन बरष्षत।
कतहुँ बाजिसों बाजि मर्दि, गजराज करष्षत॥
चरनचोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिदु जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम, जय!' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

वे कहीं तो वृक्ष और पर्वत उखाड़कर शत्रुसेनापर बरसाते हैं, कहीं घोड़ेसे

घोड़ेको मसल डालते हैं और कहीं हाथियोंको घसीट-घसीटकर मारते हैं। उनके लात और थप्पड़की चोट शत्रुओंकी छाती और सिरपर बजती है। वे वीरवर उस कठिन सेनाका संहार करते हुए मेघके समान गरजते हैं। योद्धाओंको पूँछमें लपेटकर (पृथ्वीपर) पटकते हुए वे 'जय राम', 'जय राम!' उच्चारण करते हैं। इस प्रकार तुलसीदासके प्रभु पवनकुमार (हनुमान्जी) क्रोधित होकर अविचल युद्धलीला करते हैं॥ ४७॥

अंग-अंग दलित ललित फूले किंसुक-से
हने भट लाखन लखन जातुधानके।
मारि कै, पछारि कै, उपारि भुजदंड चंड,
खंडि-खंडि डारे ते बिदारे हनुमानके॥
कूदत कबंधके कदंब बंब-सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौबानके।
तुलसी महेसु, बिधि, लोकपाल, देवगन,
देखत बेवान चढ़े कौतुक मसानके॥

लक्ष्मणजीके द्वारा मारे हुए रावणके लाखों वीरोंका अङ्ग-अङ्ग घायल हो गया, जिससे वे फूले हुए सुन्दर पलाशके समान मालूम होते हैं (और कुछ वीरोंको) हनुमान्जीने मारकर, पछाड़कर, उनके प्रबल भुजदण्डोंको उखाड़कर, विदीर्णकर तथा खण्ड-खण्ड करके डाल दिया। कबन्धोंके झुंड बं-बं शब्द करते कूदते-फिरते हैं और दौड़-दौड़कर मानो श्रीरामचन्द्रके बाणोंकी शीघ्रता दिखाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि उस समय शिव, ब्रह्मा, (आठों) लोकपाल और (अन्य) देवगण भी विमानोंपर चढ़े रणभूमिका तमाशा देखते हैं॥ ४८॥

लोथिन सों लोहूके प्रबाह चले जहाँ-तहाँ
मानहुँ गिरिन्ह गेरु-झरना झरत हैं।
श्रोनितसरित घोर, कुंजर-करारे भारे,
कूलतें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट-सरीर नीरचारी भारी-भारी तहाँ,
सूरनि उछाहु, कूर-कादर डरत हैं।
फेकरि-फेकरि फेरु फारि-फारि पेट खात,
काक-कंक बालक कोलाहलु करत हैं॥

जहाँ-तहाँ लोथोंसे लोहूकी धाराएँ बह चलीं, मानो पर्वतोंसे गेरूके झरने झर रहे हैं। लोहूकी भयंकर नदी बहने लगी; हाथी उस नदीके भारी करारे हैं और घोड़े गिरते हुए ऐसे मालूम होते हैं मानो किनारेके वृक्ष जड़सहित उखड़कर पड़ रहे हैं। वीरोंके शरीर उस नदीके बड़े-बड़े जल-जन्तु हैं। उस दृश्यको देखकर शूरवीरोंको तो बड़ा उत्साह होता है; किंतु निकम्मे और कायर लोग डरते हैं। सियार चिल्ला-चिल्लाकर पेट फाड़-फाड़कर खाते हैं और कौए, गृध्र आदि बालकोंके समान कोलाहल कर रहे हैं॥ ४९॥

ओझरीकी झोरी काँधें, आँतनिकी सेल्ही बाँधें,
मूँड़के कमंडल खपर किएँ कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनीं तापसीं-सी
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै॥
श्रोनितसों सानि-सानि गूदा खात सतुआ-से
प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि-घोरि कै।
'तुलसी' बैताल-भूत साथ लिए भूतनाथु,
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै॥

कंधेपर पेटकी पचौनी*की झोली लिये, अँतड़ियोंकी सेल्ही (गंडा) बाँधे और खोपड़ीके कमण्डलुको खुरचकर खप्पर बनाये जटाधारी जोगिनियोंके झुंड-के-झुंड तपस्विनियोंकी भाँति समररूपी नदीमें स्नान कर किनारे-किनारे बैठी हैं। वे गूदे (मांस) को रुधिरसे सान-सानकर सत्तूके समान खा रही हैं और कोई-कोई प्रेत उसे घोल-घोलकर पी जाते हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि भूतनाथ भैरव भूत और वेतालोंको साथ लिये उनकी ओर देख-देखकर हाथ-से-हाथ मिला हँस रहे हैं॥ ५०॥

राम-सरासन तें चले तीर रहे न सरीर, हड़ावरि फूटीं।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटीं॥
श्रोनित-छीट-छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसालमें फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥

श्रीरामचन्द्रके धनुषसे छूटकर बाण रावणके शरीरमें अटकते नहीं,

---

* पेटके भीतरकी वह थैली जिसमें भोजन रहता है।

अस्थिपञ्जरको फोड़कर निकल जाते हैं, तो भी धीर रावण इस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनता। यह देखकर जोगिनियाँ हाथमें खप्पर लेकर (रक्तपानार्थ) जुट गयीं। रुधिरके छींटोंकी छटासे युक्त होकर तुलसीदासके प्रभु (भगवान् श्रीरामचन्द्र) बड़े सुहावने मालूम होते हैं। उनकी सुन्दर छबि ऐसी मालूम होती है मानो मरकतके विशाल पर्वतपर सुन्दर बीरबहूटियाँ फैल गयी हों॥ ५१॥

लक्ष्मणमूर्च्छा

मानी मेघनादसों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने-अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लखनलालु लखि बिलखाने रामु,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दीलकी॥
भाईको न मोहु, छोहु सीयको न तुलसीस,
कहैं 'मैं बिभीषनकी कछु न सबील की'।
लाज बाँह बोलेकी, नेवाजेकी सँभार-सार,
साहेबु न रामु-से बलाइ लेउँ सीलकी॥

बड़े-बड़े वीर अभिमानी मेघनादसे ललकारकर भिड़ गये और उन्होंने अपने-अपने पुरुषार्थमें कमी नहीं की। लक्ष्मणजीको घायल देखकर श्रीरामचन्द्रजी बिलखने लगे और जगत्के निवासस्थान (भगवान्) के दिलकी आशाएँ शिथिल हो गयीं। तुलसीदासके स्वामीको न तो भाईका मोह है और न जानकीजीकी ममता है, वे यही कह रहे हैं कि मैंने विभीषणके लिये कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। उन्हें तो अपने शरणमें लियेकी लाज है और अपने अनुगृहीत दासकी सार-सँभालका खयाल है। श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई स्वामी नहीं है, मैं उनके शीलकी बलिहारी जाता हूँ॥ ५२॥

कानन बासु, दसाननु सो रिपु,
आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो,
कपि पालि बिभीषनु भूपु कियो है॥
तीय हरी, रन बंधु पर्‍यो,
पै भर्‍यो सरनागत-सोच हियो है।

बाँह-पगार उदार कृपाल
कहाँ रघुबीरु सो बीरु बियो है॥

वनमें निवास है और दशमुख रावणके समान प्रबल शत्रु है, तो भी प्रभुके मुखकी शोभाने चन्द्रमाकी शोभाको जीत लिया है। महाबलशाली वालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की और विभीषणको राजा बनाया। इधर स्त्री हरी गयी और भाई भी समरमें गिर गये, तो भी हृदयमें शरणागतकी ही चिन्ता है। भला, श्रीरामचन्द्रजीके समान अपनी भुजाका आश्रय देनेवाला उदार और दयालु वीर दूसरा कहाँ मिलेगा?॥ ५३॥

लीन्हो उखारि पहारु बिसाल,
चल्यो तेहि काल, बिलंबु न लायो।
मारुतनंदन मारुतको, मनको,
खगराजको बेगु लजायो॥
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो,
पै हिएँ उपमाको समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बतकी नभ
लीक लसी, कपि यों धुकि धायो॥

[लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा-निवृत्तिके लिये जब सुषेणने सञ्जीवनी बूटी निश्चित की तो उसे लानेके लिये श्रीहनुमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतपर गये। तब उसे पहचान न सकनेके कारण] उन्होंने उस विशाल पर्वतको उखाड़ लिया और तनिक भी विलम्ब न कर तत्काल चल दिये। उस समय मारुतनन्दन (हनुमान्‌जी) ने वायु, गरुड़ और मनकी गतिको भी लज्जित कर दिया। गोसाईंजी कहते हैं कि मैं उनके प्रचण्ड वेगका वर्णन करता, परंतु हृदयमें उसकी उपमाकी सामग्री कहीं नहीं मिली। हनुमान्‌जी झपटकर ऐसे दौड़े कि आकाशमें पर्वतकी प्रत्यक्ष लकीर-सी शोभित होने लगी [तात्पर्य यह कि ऐसी शीघ्रतासे हनुमान्‌जी पर्वत लेकर चले कि चलने और पहुँचनेके स्थानतक एक ही पर्वत मालूम होता था]॥ ५४॥

चल्यो हनुमानु, सुनि जातुधानु कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहारु बहु जोजनको,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥

बेगु, बलु, साहसु, सराहत कृपाल रामु,
भरतकी कुसल, अचलु ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथके बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥

हनुमान्‌जीका जाना सुन रावणने राक्षस कालनेमिको भेजा। उसने मुनिका वेष बनाया और इस प्रकार छल करनेका फल पाया अर्थात् मारा गया। हनुमान्‌जीने अनेकों योजनके पर्वतको सहसा उखाड़ लिया और रक्षकोंको मारकर बड़े-बड़े अनेक वीरोंका नाश कर दिया। 'देखो, हनुमान्‌जी चलकर पर्वत और भरतजीका कुशल-समाचार लाये हैं'—ऐसा कहकर कृपालु रघुनाथजी उनके बल, साहस और वेगकी सराहना करने लगे, मानो श्रीरामचन्द्रजी कपिनाथ (हनुमान्‌जी) के हाथ बिक गये। तुलसीदासके स्वामी शीलसिन्धु श्रीरामचन्द्रजीने सम्यक् प्रकारसे उनका उपकार माना॥ ५५॥

युद्धका अन्त

बाप दियो काननु, भो आननु सुभाननु सो,
बैरी भो दसाननु सो, तीयको हरनु भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराजको,
बिभीषनु नेवाजि, सेत सागर-तरनु भो॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि-बिधि हारे हिएँ,
घायल लखन बीर बानर बरनु भो।
ऐसे सोकमें तिलोकु कै बिसोक पलही में,
सबही को तुलसीको साहेबु सरनु भो॥

पिताने वनवास दिया, रावण-जैसा वीर शत्रु हो गया, जिसके द्वारा सीताजी हरी गयीं, तो भी जिनका मुख बड़ा प्रसन्न रहा—मलिन नहीं हुआ। बलशाली वालिको मारकर सुग्रीवकी रक्षा की, विभीषणपर कृपा की और पुल बाँधकर समुद्रको लाँघा; फिर जिनके घोर युद्धको देखकर शिव और ब्रह्मा भी हृदयमें हार गये और वीर लक्ष्मणजी घायल होकर (खून और मिट्टीसे ऐसे लथपथ हो गये कि) उनका रंग वानरोंका-सा (भूरा) हो गया। ऐसे शोकमें भी जिन्होंने तीनों लोकोंको पलमात्रमें विशोक कर दिया अर्थात् लक्ष्मणजीको सचेत और

रावणको मारकर सबकी रक्षा की, वे तुलसीदासके प्रभु सभीको शरण देनेवाले हुए॥ ५६॥

कुंभकरन्नु हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधरु कंधर तोरे।
पूषनबंस बिभूषन-पूषन-तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे॥
देव निसान बजावत, गावत, सावँतु गो, मनभावत भो रे।
नाचत-बानर-भालु सबै 'तुलसी' कहि 'हारे! हहा भै अहो रे'॥

भगवान् रामने युद्धमें कुम्भकर्णको मारा और रावणकी गर्दनें तोड़कर उसका भी वध किया। इस प्रकार सूर्यवंशविभूषण श्रीरामरूप सूर्यके प्रतापरूप तेजसे शत्रुरूपी ओले गल गये। देवतालोग नगाड़े बजाकर गाते हैं; क्योंकि उनका सामन्तपन (अधीनता) चला गया और उनकी मनभायी बात हुई है तथा वानर-भालु भी सब-के-सब 'ओहो रे! खूब हुइ, ओहो रे! खूब हुई' ऐसा कहकर नाचते हैं॥ ५७॥

मारे रन रातिचर रावनु सकुल दलि,
अनुकूल देव-मुनि फूल बरषतु हैं।
नाग, नर, किंनर, बिरंचि, हरि, हरु हेरि
पुलक सरीर, हिएँ हेतु हरषतु हैं॥
बाम ओर जानकी कृपानिधानके बिराजैं,
देखत बिषादु मिटै, मोदु करषतु हैं।
आयसु भो, लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
'तुलसी' निहाल कै कै दिये सरखतु हैं॥

श्रीरामचन्द्रजीने रावणका उसके कुलसहित दलन कर युद्धमें राक्षसोंका संहार किया। इससे देवता और मुनिगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। यह देखकर नाग, नर, किन्नर तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके शरीर पुलकित हो जाते हैं और हृदयमें प्रेम और आनन्द भर जाता है। कृपानिधान (श्रीरामचन्द्रजी) की बायीं ओर जानकीजी विराजमान हैं, जिनके दर्शनसे विषाद मिट जाता है और आनन्द वृद्धिको प्राप्त होता है। लोकपाल सब आज्ञा पाकर अपने-अपने लोकोंको चले गये। गोसाईंजी कहते हैं कि भगवान्ने सबको निहाल कर-करके मानो परवाना दे दिया (कि अब तुमलोग निर्भय रहो)॥ ५८॥

(इति लंकाकाण्ड)

उत्तरकाण्ड

रामकी कृपालुता

बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे।
पलमें दल्यो दासरथीं दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे॥
राम-सुभाउ सुनें 'तुलसी' हुलसै अलसी हम-से गलगाजे।
कायर कूर कपूतनकी हद, तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥

वालि-से वीरको मारकर (श्रीरामचन्द्रजीने) सुग्रीवको राज्य दिया। इससे देवतालोग हर्षित होकर बाजे बजाने लगे। दशरथनन्दन (श्रीरामचन्द्र) ने पलभरमें रावणको मार डाला और लंकामें विभीषण राज्यपर सुशोभित हुए। तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव सुनकर मेरे-जैसे और आलसी भी आनन्दित होकर गाल बजाते हैं। जो लोग कायर, क्रूर और कपूतोंकी हद थे, उनपर भी गरीबनिवाज भगवान् रामने कृपा की॥ १॥

बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावनसों नितु आवैं।
दानव-देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिरु नावैं॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें, जो प्रभुता कबि-कोबिद गावैं।
रामसे बाम भएँ तेहि बामहि बाम सबै सुख-संपति लावैं॥

रावणके यहाँ ब्रह्माजी (स्वयं) वेद-पाठ करते थे और शिवजी भयवश नित्य पूजन करानेके लिये आते थे तथा दैत्य और देवगण दुःखी, दीन एवं दयापात्र होकर उसे प्रतिदिन दूरहीसे सिर नवाते थे। ऐसा भाग्य भी, जिसकी प्रभुता कवि-कोविद गाते हैं, उस रावणको छोड़कर भाग गया। श्रीरामचन्द्रसे विमुख होनेपर सारी सुख-सम्पदाएँ उस वामसे विमुख हो जाती हैं॥ २॥

बेद बिरुद्ध मही, मुनि, साधु ससोक किए, सुरलोकु उजारो।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो॥
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम! सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलौं बिभीषन लातु न मारो॥

वेद-विरुद्ध आचरण करनेवाले रावणने पृथ्वी, मुनिगण और साधुओंको शोकयुक्त कर दिया तथा देवलोकको उजाड़ डाला और कहाँतक कहें, उसने (उनकी) स्त्रीतकको चुरा लिया, तब भी करुणाकर (प्रभु) ने उसपर क्रोध

नहीं किया। गोसाईंजी कहते हैं कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने आपका स्वभाव जान लिया; आपने सेवक (विभीषण) के स्नेहवश ही (अपनी स्वाभाविक) क्षमाको छोड़ा; क्योंकि जबतक रावणने विभीषणको लात नहीं मारी, तबतक आपने उसके दर्पको चूर्ण नहीं किया॥ ३॥

सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीसु कियो, जगु जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरिको बंधु बिभीषनु कीन्ह पुरंदर कैसो॥
नाम लिएँ अपनाइ लियो तुलसी-सो, कहौं, जग कौन अनैसो।
आरत आरति भंजन रामु, गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो॥

आपने शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए सुग्रीवको निकालकर जिस प्रकार वानरोंका राजा बनाया, सो सारा संसार जानता है। नीच निशाचर और अपने शत्रुके भाई विभीषणको इन्द्रके समान (ऐश्वर्यशाली) बना दिया। केवल नाम लेनेसे ही तुलसी-जैसेको भी अपना लिया, जिसके समान बुरा संसारमें, कहो दूसरा कौन है ? भगवान् राम ही दुःखियोंके दुःखको दूर करनेवाले हैं; उनके-जैसा कोई दूसरा गरीबनिवाज नहीं है॥ ४॥

मीत पुनीत कियो कपि भालुको, पाल्यो ज्यों काहुँ न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषनु भो, अजहूँ बिलसै बर बंधुबधू जो॥
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपाल न दूजो।
कूर, कुजाति, कुपूत, अघी, सबकी सुधरै, जो करै नरु पूजो॥

(उन्होंने) वानर और भालुओंतकको अपना पवित्र मित्र बनाया और उनकी ऐसी रक्षा की जैसी कोई अपने बालक पुत्रकी भी नहीं करेगा और वे विभीषण, जो (चिरजीवी होनेके कारण) आजतक अपने बड़े भाईकी स्त्री (मन्दोदरी) का उपभोग करते हैं, साधुताकी सीमा बन गये। गोसाईंजी कहते हैं कि कोसलेश्वर श्रीरामचन्द्रजीके अतिरिक्त कोई दूसरा ऐसा कृपालु और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला नहीं है। जो मनुष्य उनकी पूजा करते हैं उन सभीकी बन जाती है, चाहे वे क्रूर, कुजाति, कुपूत और पापी ही क्यों न हों॥ ५॥

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहिं पावककी कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनिकी बिधि बोलि कही है॥
कीस-निसाचरकी करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागतकी अनखौंहीं, अनैसी सुभायँ सही है॥

जिन्होंने अग्निकी अपवित्रता (दाहकता) को भी जला डाला (अर्थात् जिनका पवित्र स्पर्श पाकर अग्नि भी पवित्र और शीतल हो गयी) ऐसी नारी-शिरोमणि जानकीजीको भी उन्होंने (लोकापवाद सुनकर) त्याग दिया; यही नहीं, अपने धर्मधुरन्धर बन्धु (लक्ष्मणजी) को (भी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये) त्याग दिया और पुरजनोंको बुलाकर कर्तव्यका उपदेश दिया, किंतु बंदर (सुग्रीवादि) और राक्षसों (विभीषणादि) की करनी (भ्रातृवधूसे भोग) को न तो सुना, न देखा और न चित्तमें ही रखा। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रने अपने शरणागतोंकी क्रोध उत्पन्न करनेवाली बात और अनुचित बर्तावको भी सदा स्वभावसे ही सहा है॥ ६॥

अपराध अगाध भएँ जनतें, अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका, गज, गीध, अजामिलके गनि पातकपुंज सिराहिं न जू॥
लिएँ बारक नामु सुधामु दियो, जेहिं धाम महामुनि जाहिं न जू।
तुलसी! भजु दीनदयालहि रे! रघुनाथु अनाथहि दाहिन जू॥

सेवकोंसे भारी-भारी अपराध हो जानेपर भी आप उन्हें अपने मनमें नहीं लाते (उनपर ध्यान नहीं देते)। गणिका, गज, गीध और अजामिलके पातकपुञ्ज गिननेपर समाप्त होनेवाले नहीं थे; किंतु उन्हें एक बार नाम लेनेसे भी वह परमधाम दिया, जिसमें महामुनि भी नहीं जा सकते। गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं कि 'अरे तुलसीदास! दीनदयालु श्रीरामचन्द्रजीको भज; वे अनाथोंके अनुकूल (सहायक) हैं'॥ ७॥

प्रभु सत्य करी प्रहलादगिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झषराज ग्रस्यो गजराजु, कृपा ततकाल बिलंबु कियो न तहाँ॥
सुर साखि दै राखी है पांडुबधू पट लूटत,कोटिक भूप जहाँ।
तुलसी! भजु सोच-बिमोचनको, जनको पनु राम न राख्यो कहाँ॥

भगवान्ने प्रह्लादके वचनको सत्य किया और महान् खम्भके बीचमेंसे नरसिंहरूपमें प्रकट हुए। जब ग्राहने गजको पकड़ा तो तत्काल ही कृपा की; जरा-सा भी विलम्ब नहीं किया। करोड़ों राजाओंके सामने जिसका वस्त्र लूटा जा रहा था, उस द्रौपदीकी देवताओंको साक्षी बनाकर रक्षा की। गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं कि 'अरे तुलसीदास ! शोकसे छुड़ानेवाले श्रीरामचन्द्रको भज, उन्होंने सेवकके प्रणको कहाँ नहीं निबाहा?'॥ ८॥

नरनारि उघारि सभा महुँ होत दियो पटु, सोचु हर्‌यो मनको।
प्रहलाद-बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारनको॥
जो कहावत दीनदयाल सही, जेहि भारु सदा अपने पनको।
'तुलसी' तजि आन भरोस भजें, भगवानु भलो करिहैं जनको॥

नरावतार (अर्जुन) की स्त्री (द्रौपदी) सभामें नंगी की जा रही थी, उसे वस्त्र देकर उसके मनका सोच दूर किया। जो प्रह्लादके दुःखको दूर करनेवाले, गजको बचानेवाले, बिना कारणके मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं, जिनको अपने प्रणका सदैव भार (ध्यान) रहता है, गोसाईंजी कहते हैं कि औरोंका भरोसा त्यागकर उन भगवान्‌का भजन करनेसे वे अपने दासका भला करेंगे ही॥ ९॥

रिषिनारि उधारि, कियो सठ केवटु मीतु पुनीत, सुकीर्ति लही।
निजलोकु दियो सबरी-खगको, कपि थाप्यो, सो मालुम है सबही॥
दससीस-बिरोध सभीत बिभीषनु भूपु कियो, जग लीक रही।
करुनानिधिको भजु, रे तुलसी! रघुनाथु अनाथके नाथु सही॥

(भगवान् रामने) ऋषि (गौतम)की पत्नी (अहल्या) का उद्धार किया और दुष्ट केवटको मित्र बनाकर पवित्र कर दिया और इस प्रकार सुकीर्ति प्राप्त की; शबरी और गीधको अपना लोक दिया और सुग्रीवको राज्यपर स्थापित किया, सो सबको मालूम ही है; रावणके विरोधसे डरे हुए विभीषणको राजा बनाया, जिससे उनकी कीर्ति संसारभरमें छा गयी। गोसाईंजी कहते हैं—'अरे तुलसीदास! करुणानिधि (श्रीरामचन्द्र)को भज, वे अनाथोंके सच्चे स्वामी हैं'॥ १०॥

कौसिक, बिप्रबधू, मिथिलाधिपके सब सोच दले पल माहैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि, सत्रु सुसाहेब-सीलु सराहैं॥
ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायककी अगनी गुनगाहैं।
आरत, दीन, अनाथनको रघुनाथु करैं निज हाथकी छाहैं॥

(श्रीरघुनाथजीने) विश्वामित्र, ऋषिपत्नी (अहल्या) और मिथिलापति (महाराज जनक)की सभी चिन्ताओंको पलभरमें हर लिया। वालि और रावणके भाई (सुग्रीव और विभीषण) की कथा सुनकर शत्रु भी हमारे श्रेष्ठ स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) के शीलकी सराहना करते हैं। गोसाईंजी श्रीरघुनाथजीकी ऐसी अगणित अनुपम गुण-गाथाएँ कहते हैं। आर्त, दीन और अनाथोंको रघुनाथजी अपने हाथकी छाया-तले कर लेते हैं॥ ११॥

तेरे बेसाहें बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनिहारे।
ब्योम, रसातल, भूमि भरे नृप कूर, कुसाहेब सेंतिहुँ खारे॥
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै! रजतें लघु को करै मेरुतें भारे?
स्वामि सुसील समर्थ सुजान, सो तो-सो तुहीं दसरत्थ दुलारे॥

तुम्हारे खरीदने (अपना लेने) से जीव औरोंको भी खरीद (गुलाम बना) सकता है, और सब (अन्य देवता) तो खरीदकर बेच देनेवाले हैं। आकाश, रसातल और पृथ्वीमें अनेकों निर्दय राजा और दुष्ट स्वामी भरे पड़े हैं, किंतु वे तो मुफ्तमें मिलें तो भी त्यागने योग्य ही हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि उनकी सेवा करके कौन मरे। धूलके समान लघु सेवकको सुमेरुसे भी बड़ा बनानेवाला (तुम्हारे सिवा और) कौन है? हे दशरथनन्दन! तुम्हारे समान सुशील, समर्थ और सुजान स्वामी तो तुम्हीं हो॥ १२॥

जातुधान, भालु, कपि, केवट, बिहंग जो-जो
पाल्यो नाथ! सद्य सो-सो भयो काम-काजको।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए,
राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराजको॥
नामु तुलसी, पै भोंडो भाँग तें, कहायो दासु,
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाजको।
साहेबु समर्थ दसरत्थके दयालदेव!
दूसरो न तो-सो तुहीं आपनेकी लाजको॥

हे नाथ! आपने निशाचर, भालु, वानर, केवट, पक्षी—जिस-जिसको अपनाया, वही तुरंत (निकम्मेसे) कामका हो गया। दुःखी, अनाथ, दीन, मलीन—जो भी शरणमें आये, उन्हींको आपने अपना लिया। ऐसा महाराजका स्वभाव है। नाम तो (मेरा) तुलसी है, पर हूँ मैं भाँगसे भी बुरा, और कहलाने लगा दास और आपने ऐसे दगाबाजको भी अङ्गीकार कर लिया। हे दशरथनन्दन! आपके समान कोई दूसरा समर्थ स्वामी अथवा दयालुदेव नहीं है; अपने शरणागतकी लज्जा रखनेवाले तो आप ही हैं॥ १३॥

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठु कपि
सखा किए महाराज! हो न काहू कामको।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आएँ,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बामको॥

राय, दसरत्थके! समर्थ तेरे नाम लिएँ,
तुलसी-से कूरको कहत जगु रामको।
आपने निवाजेकी तौ लाज महाराजको
सुभाउ, समुझत मनु मुदित गुलामको॥

हे महाराज ! आपने महाबलवान् वालिको मारकर कायर सुग्रीवको मित्र बनाया, जो किसी कामका नहीं था। भाईको धोखा देनेका पाप करनेवाले राक्षसको शरण आनेपर—इतना प्रतिकूल होते हुए भी—स्वीकार कर लिया। हे महाराज दशरथके समर्थ सुपूत! तुम्हारा नाम लेनेसे आज तुलसी-जैसे कपटीको भी लोग रामका कहते हैं। अपने अनुगृहीत दासकी लाज रखना तो महाराजका स्वभाव ही है, यह समझकर सेवकका मन आनन्दित होता है॥ १४॥

रूप-सीलसिंधु, गुनसिंधु, बंधु दीनको,
दयानिधान, जानमनि, बीरबाहु-बोलको।
स्राद्ध कियो गीधको, सराहे फल सबरीके
सिला-साप-समन, निबाह्यो नेहु कोलको॥
तुलसी उराउ होत रामको सुभाउ सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिनु मोल को।
ऐसेहू सुसाहेबसों जाको अनुरागु न, सो
बड़ोई अभागो, भागु भागो लोभ-लोलको॥

भगवान् राम रूप और शीलके सागर, गुणोंके समुद्र, दीनोंके बन्धु, दयाके निधान, ज्ञानियोंमें शिरोमणि तथा वचन और बाहुबलमें शूरवीर हैं। उन्होंने गृध्रका श्राद्ध किया, शबरीके फलोंकी प्रशंसा की, शिला बनी हुई अहल्याके शापको शमन किया और भीलोंके साथ प्रेम निबाहा। गोसाईंजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रके स्वभावको सुनकर उत्साह होता है। उसपर कौन न्योछावर नहीं होगा और कौन उसके हाथ बिना मोल नहीं बिक जायगा। ऐसे उत्तम स्वामीसे भी जिसे प्रीति नहीं है, वह बड़ा ही अभागा है और उस लोभसे चलायमान मनुष्यका भाग्य ही उससे दूर भाग गया है॥ १५॥

सूरसिरताज, महाराजनि के महाराज,
जाको नामु लेतहीं सुखेतु होत ऊसरो।
साहेबु कहाँ जहान जानकीसु सो सुजान,
सुमिरें कृपालुके मरालु होत खूसरो॥

केवट, पषान, जातुधान, कपि-भालु तारे,
अपनायो तुलसी-सो धींग धमधूसरो।
बोलको अटल, बाँहको पगारु, दीनबंधु,
दूबरेको दानी, को दयानिधानु दूसरो॥

जो वीरोंके शिरोमणि और महाराजोंके महाराज हैं, जिनका नाम लेते ही बंजर जमीन भी उपजाऊ हो जाती है, उन जानकीपति (श्रीराम) के समान सुजान स्वामी संसारमें कौन है? जिस कृपालुको स्मरण करनेसे ही उल्लू भी हंस हो जाता है। उन्होंने केवट, शिलारूप (अहल्या), राक्षस, वानर और भालुओंको तारा और तुलसी-से गँवार मुस्टंडेको भी अपना लिया। उनके समान बातका पक्का और भुजाओंका आश्रय देनेवाला तथा दुःखियोंका सगा, दुर्बलोंका दानी और दयाका भण्डार दूसरा कौन है?॥ १६ ॥

कीबेको बिसोक लोक लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि-भालुको।
पबिको पहारु कियो ख्यालही कृपाल राम,
बापुरो बिभीषनु घरौंधा हुतो बालुको॥
नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहालु को?
तुलसीकी बार बड़ी ढील होति सीलसिंधु!
बिगरी सुधारिबेको दूसरो दयालु को॥

लोकोंको शोकरहित करनेके लिये (इन्द्रादिक) सभी लोकपाल थे, परंतु [आजतक] रीछ-वानरोंको खिलाने-पिलानेवाला कोई कहीं नहीं हुआ। बेचारा विभीषण जो बालूके घरौंदे (खेलवाड़के घर) के समान निर्बल था, उसे श्रीरामचन्द्रने संकल्पमात्रसे वज्रके पहाड़की तरह दुर्धर्ष बना दिया। खोटे और दुष्ट लोग भी उनके नामकी ओट लेते ही निर्दोष हो जाते हैं। भला, बिना परिश्रम (धनकी) गठरी पाकर कौन निहाल नहीं हुआ? तुलसीदासजी कहते हैं, हे शीलसिन्धु! मेरी बार बड़ी ढिलाई हो रही है। भला, बिगड़ीको बनानेवाला आपके सिवा दूसरा कौन कृपालु है?॥ १७ ॥

नामु लिएँ पूतको पुनीत कियो पातकीसु,
आरति निवारी 'प्रभु पाहि' कहें पीलकी।

छलिनको छोंड़ी, सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति
कीन्ही लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भीलकी॥
तुलसी औ तारिबो, बिसारिबो न अंत मोहि,
नीकें है प्रतीति रावरे सुभाव-सीलकी।
देऊ तौ दयानिकेत, देत दादि दीननको,
मेरी बार मेरें ही अभाग नाथ ढील की॥

आपने पुत्रका नाम लेनेसे ही पातकियोंके सरदार (अजामिल) को पवित्र कर दिया और 'रक्षा करो' ऐसा कहते ही गजराजका दुःख दूर कर दिया। जो छलियोंकी लड़की, अभागी, जाति-पाँतिमें छोटी तथा गँवार भीलकी स्त्री थी, उसे भी आपने अपनेमें लीन कर लिया। अब आप तुलसीको भी तार दें। अन्तमें मुझे ही न भूल जायँ। आपके शील-स्वभावका मुझे खूब भरोसा है। हे देव! आप तो दयाधाम हैं; गरीबोंकी सदा ही सहायता करते हैं। हे नाथ! अब मेरी बार मेरे ही दुर्भाग्यसे आपने ढिलाई की है॥ १८॥

आगें परे पाहन कृपाँ किरात, कोलनी,
कपीसु, निसिचरु अपनाए नाएँ माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
रिनियाँ कहाए हौ, बिकाने ताके हाथ जू॥
तुलसी-से खोटे खरे होत ओट नाम ही कीं,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
बात चलें बातको न मानिबो बिलगु, बलि,
काकीं सेवाँ रीझिकै नेवाजो रघुनाथ जू?

हे नाथ! आपने कृपा करके अपने आगे पड़ी शिलाको तथा किरात, भीलनी, सुग्रीव और केवल सिर नवानेसे ही राक्षस विभीषणको अपना लिया। हे सुजानशिरोमणि ! सच्ची सेवा तो आपकी हनुमान्‌जीने की, जो आप उनके ऋणी कहलाये और उनके हाथ बिक गये। तुलसीके समान दम्भी भी आपके नामकी ओट लेनेसे ही सच्चे हो जाते हैं, जैसे रास्तेकी मिट्टी कस्तूरीके संसर्गसे बहुमूल्य हो जाती है। इस प्रसंगपर यदि मैं कोई बात पूछूँ तो बुरा न मानियेगा। हे रघुनाथजी ! मैं आपकी बलि जाता हूँ, भला, आपने किसकी सेवासे रीझकर कृपा की है? [अर्थात् आपने अपनी कृपालुतासे ही अपने सेवकोंको बढ़ाया है,

किसीने भी ऐसी सेवा नहीं की, जिससे आप रीझ सकें।] ॥ १९ ॥

कौसिककी चलत, पषानकी परस पाय,
टूटत धनुष बनि गई है जनककी।
कोल, पसु, सबरी, बिहंग, भालु, रातिचर,
रतिनके लालचिन प्रापति मनककी॥
कोटि-कला-कुसल कृपाल नतपाल! बलि,
बातहू केतिक तिन तुलसी तनककी।
राय दसरत्थके समत्थ राम राजमनि!
तेरें हेरें लोपै लिपि बिधिहू गनककी॥

विश्वामित्रजीकी बात (केवल साथ) चल देनेसे, शिला (बनी हुई अहल्या) की चरणस्पर्शमात्रसे और राजा जनककी धनुषके टूटनेसे बन गयी। कोल, पशु (सुग्रीवादि वानर), शबरी, गीध (जटायु), भालु और (विभीषण आदि) राक्षसोंको रत्तीभरका लालच था, उनको मनभरकी प्राप्ति हो गयी (अर्थात् जितना वे चाहते थे, उससे बहुत अधिक उन्हें मिल गया)। हे करोड़ों कलाओंमें कुशल एवं विनीतकी रक्षा करनेवाले दयालो ! आपकी बलिहारी है; तिनकेके समान तुच्छ इस तुलसीदासकी बात ही कितनी है। हे महाराज दशरथके समर्थ पुत्र राजशिरोमणि राम ! तुम्हारी दृष्टिमात्रसे ब्रह्मा-जैसे ज्योतिषीकी लिपि भी मिट जाती है॥ २०॥

सिला-श्रापु पापु, गुह-गीधको मिलापु
सबरीके पास आपु चलि गए हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायकु बिभीषनु
भरतसभा सादर सनेह सुरधुनी मैं॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल
साहेबु समर्थ एकु, नीकें मन गुनी मैं।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम!
'तुलसी' न दूसरो दयानिधानु दुनी मैं॥

मैंने शिला (बनी हुई अहल्या)के शाप (और व्यभिचाररूप) पाप, निषाद तथा गीध (जटायु)से मिलनेकी बात सुनी और शबरीके पास स्वयं (बिना बुलाये) चले गये, यह सभी मैं सुन चुका हूँ। आपने स्नेह एवं आदरपूर्वक भरतजीके सामने सभाके बीच अपने सेवक वानरराज (सुग्रीव) की और

विभीषणकी गङ्गाके समान (पवित्र) कहकर प्रशंसा की। मैंने मनमें अच्छी तरह विचार कर लिया कि आलसी, अभागे, पापी, आर्त्त और अनाथोंका पालन करनेवाले समर्थ साहब एक आप ही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—दोष, दुःख और दरिद्रताका नाश करनेवाले हे दीनबन्धु राम! आपके समान दयानिधान दुनियामें दूसरा नहीं है॥ २१॥

मीतु बालिबंधु, पूतु, दूतु, दसकंधबंधु
सचिव, सराधु कियो सबरी-जटाइको।
लंक जरी जोहें जियँ सोचुसो बिभीषनुको,
कहौ ऐसे साहेबकी सेवाँ न खटाइ को॥
बड़े एक-एकतें अनेक लोक लोकपाल,
अपने-अपनेको तौ कहैगो घटाइ को।
साँकरेके सेइबे, सराहिबे, सुमिरिबेको
रामु सो न साहेबु, न कुमति-कटाइको॥

वालिके भाई (सुग्रीव) को अपना मित्र बनाया, उसके पुत्र (अङ्गद) को दूत बनाया, रावण (जैसे शत्रु) के भाई (विभीषण) को मन्त्री बनाया, जटायु और शबरीका श्राद्ध किया तथा लंकाको जली देख चित्तमें विभीषणके लिये चिन्ता-सी हुई (कि जली हुई लंका मैंने इन्हें दी), कहो, भला ऐसे स्वामीकी सेवामें कौन नहीं निभ जायगा? अनेकों लोकोंमें वहाँके लोकपाल एक-से-एक बड़े हैं, अपने-अपने स्वामीको भला कौन घटाकर कहेगा। परंतु दुःखमें सेवन करनेको, सराहनेको और स्मरण करनेको, भगवान् रामके समान कुमतिकी निवृत्ति करनेवाला कोई दूसरा स्वामी नहीं है॥ २२॥

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल
कारन कृपाल, मैं सबैके जीकी थाह ली।
कादरको आदरु काहूकें नाहिं देखिअत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली॥
तुलसी सुभायँ कहै, नाहीं कछु पच्छपातु,
कौनें ईस किए कीस-भालु खास माहली।
रामही के द्वारे पै बोलाइ सनमानिअत
मोसे दीन दूबरे कपूत कूर काहली॥

पृथ्वीपति, नागपति, देवलोकोंके स्वामी और लोकपाल—ये सब कारणवश कृपा करते हैं, मैं सभीके जीकी थाह ले चुका हूँ। कायरोंका आदर किसीके यहाँ देखनेमें नहीं आता; सबको सेवामें दक्ष सेवक सुहाते हैं। तुलसी सत्यभावसे कहता है, उसे कोई पक्षपात नहीं है—भला, किस स्वामीने रीछ और वानरोंको अपना खास माहली (रनिवासका सेवक) बनाया है ? श्रीरामचन्द्रहीके द्वारपर मेरे समान दीन, दुर्बल, कुपूत, कायर और आलसीका बुलाकर सम्मान किया जाता है॥ २३॥

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पिआसे जात पथके।
लेखें-जोखें चोखें चित 'तुलसी' स्वारथ हित,
नीकें देखे देवता देवैया घने गथके॥
गीधु मानो गुरु, कपि-भालु माने मीत कै,
पुनीत गीत-साके सब साहेब समत्थके।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसमके खसमु तुहीं पै दसरत्थके॥

राजालोग कूपके समान सेवानुकूल फल देते हैं, बिना गुण (रस्सी) के पथके पथिक प्यासे चले जाते हैं [तात्पर्य यह है कि जैसे बिना गुण (डोरी) के कूपसे जल नहीं आता, वैसे ही बिना गुणके राजालोगोंसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता]। गोसाईंजी कहते हैं, शुद्ध चित्तसे भलीभाँति हिसाब लगाकर देख लिया कि स्वार्थके लिये धन देनेवाले देवता तो बहुत-से हैं। परंतु जिन्होंने गीधको गुरु (पिता) के समान माना और वानर-भालुओंको मित्र समझा, ऐसे समर्थ स्वामीके सभी गीत और कीर्ति-कथाएँ पवित्र हैं और जितने राजा हैं, वे सब तो (अपने सेवकोंको) अच्छी तरहसे जाँचकर, सूराख करके तौलकर तथा तपाकर लेते हैं,* परंतु हे दशरथके राजकुमार! निकम्मोंके प्रभु तो बस, आप ही हैं॥ २४॥

केवल रामहीसे माँगो

रीति महाराजकी, नेवाजिए जो माँगनो, सो
दोष-दुख-दारिद दरिद्र कै-कै छोड़िए।

* सोनेको परखनेवाले ये सब क्रियाएँ करते हैं।

नामु जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर-रेंड़ गोड़िए॥
जाचै को नरेस, देस-देसको कलेसु करै
देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए।
कृपा-पाथनाथ लोकनाथ-नाथ सीतानाथ
तजि रघुनाथु हाथ और काहि ओड़िये॥

महाराजकी यह रीति है कि जिस याचकको अपनाते हैं, उसके दोष, दुःख और दरिद्रताको दरिद्र (क्षीण) करके छोड़ते हैं। जिनका नामरूप कल्पवृक्ष चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का देनेवाला है; गोसाईंजी कहते हैं—उन्हें त्यागकर बबूल और रेड़ कौन रोपे ? राजाओंसे याचना कौन करे? और देश-विदेश घूमनेका कष्ट कौन भोगे ? जो प्रसन्न होकर बहुत बढ़कर देंगे तो एक दमड़ीसे अधिक न देंगे, कृपाके समुद्र, लोकपालोंके स्वामी सीतानाथ श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और किसके आगे हाथ फैलाया जाय?॥ २५॥

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता,करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकी-जीवनको जनु ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि॥

जिसकी दृष्टिमात्रसे मनुष्य लोकपाल हो जाता है और देवतालोग सुन्दर शोकरहित स्थानको प्राप्त कर लेते हैं, वह लक्ष्मी (अपनी स्वाभाविक) चञ्चलता त्यागकर करोड़ों उपायोंसे विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीको रिझाती है; गोसाईंजी कहते हैं कि तू उनका कहलाकर कुत्तेको दिया जानेवाला टुकड़ा (तुच्छ भोग) माँगनेमें लज्जित नहीं होता। जानकीजीवन (श्रीरामचन्द्रजी) का सेवक होकर भी जो दूसरेसे माँगता है, उसकी जीभ जल जाय॥ २६॥

जड पंच मिलै जेहिं देह करी, करनी लखु धौं धरनीधरकी।
जनकी कहु, क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचरकी॥
तुलसी! कहु राम समान को आन है, सेवकि जासु रमा घरकी।
जगमें गति जाहि जगत्पतिकी परवाह है ताहि कहा नरकी॥

भला, उस धरणीधरकी लीला तो देखो, जिसने पाँच जड़ तत्त्वोंको मिलाकर यह देह बनायी है। इस प्रकार जो चराचरकी सँभाल करता है, कहो भला, अपने

भक्तोंकी सँभाल वह क्यों न करेगा ? गोसाईंजी अपनेसे ही कहते हैं—हे तुलसीदास! बतलाओ तो रामके समान दूसरा कौन है, जिसके घरकी किंकरी लक्ष्मी है, इस संसारमें जिसे उस जगत्पतिका ही भरोसा है, वह मनुष्यकी क्या परवा करेगा ?॥ २७॥

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी, अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

संसारमें किसीसे (कुछ) माँगना नहीं चाहिये! यदि माँगना ही हो तो जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्रजी) से मनहीमें माँगो, जिनसे माँगते ही याचकता (दरिद्रता, कामना) जल जाती है, जो बरबस जगत्को जला रही है। विभीषणकी दशाका विचार करके देखो और हनुमान्जीका भी स्मरण करो। गोसाईंजी कहते हैं कि हे तुलसीदास! दरिद्रतारूपी दोषको जलानेके लिये दावानलके समान और करोड़ों संकटोंको काटनेके लिये कृपाणरूप श्रीरामचन्द्रजीको भजो॥ २८॥

उद्बोधन

सुनु कान दिएँ, नितु नेमु लिएँ रघुनाथहिके गुनगाथहि रे।
सुखमंदिर सुंदर रूपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी! जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर, कुपंथ कुसाथहि रे॥

हे तुलसीदास ! नित्य नियमपूर्वक कान (ध्यान) देकर श्रीरघुनाथजीकी गुणगाथा श्रवण करो। सुखके स्थान, धनुष और तरकश धारण किये हुए (श्रीरामचन्द्रजीके) सुन्दर स्वरूपका ही सदा स्मरण करो और जिह्वासे रात-दिन आदरपूर्वक श्रीजानकीनाथका ही नाम जपो। सुशील और संत-पुरुषोंका सङ्ग करो एवं कपटी पुरुष, कुपंथ और कुसंगको त्याग दो॥ २९॥

सुत, दार, अगारु, सखा, परिवारु बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि, संतसभाँ न बिराजहि रे॥
नरदेह कहा, करि देखु बिचारु, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकरु ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥

पुत्र, कलत्र, घर, मित्र, परिवार—इन सबको महाकुसमाज समझो; सबकी

ममता त्यागकर समता धारणकर, संतोंकी सभामें नहीं विराजता ? यह नरदेह क्या है ? जरा विचारकर देखो। तुलसीदासजी (अपने ही लिये) कहते हैं— अरे गँवार! कामको न बिगाड़। लालची कुत्तेकी तरह (इधर-उधर) न भटक, कोसलराज (श्रीरामचन्द्र) का भजन कर॥ ३०॥

बिषया परनारि निसा-तरुनाई सो पाइ पर्‍यो अनुरागहि रे।
जमके पहरू दुख, रोग बियोग बिलोकत हू न बिरागहि रे॥
ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोरु, महा भय, भागहि रे।
जरठाइ-दिसाँ, रबिकालु उग्यो, अजहूँ जड़ जीव! न जागहि रे॥

तरुणाईरूपी निशा पाकर तू विषयरूपी परस्त्रीकी प्रीतिमें फँस गया है। यमराजके पहरेदार दुःख, रोग और वियोगको देखकर भी तुझे वैराग्य नहीं होता। ममतावश तू सब भूल गया। अब भोर हो गया है, इस महान् भयसे भाग जा। बुढ़ापारूपी (पूर्व) दिशामें काल (मृत्यु) रूप सूर्यका उदय हो गया। अरे जड़ जीव! तू अब भी नहीं जागता?॥ ३१॥

जनम्यौ जेहिं जोनि, अनेक क्रिया सुख लागि करीं, न परैं बरनी।
जननी-जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उरकी जरनी॥
तुलसी! अब रामको दासु कहाइ, हिएँ धरु चातककी धरनी।
करि हंसको बेषु बड़ो सबसों, तजि दे बक-बायसकी करनी॥

तूने जिस योनिमें जन्म लिया, उसीमें सुखके लिये अनेकों कर्म किये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। माता-पिता इत्यादि तेरे अनेकों हितैषी हुए और फिर उन्हींसे हृदयमें जलन होने लगी। गोसाईंजी (अपने लिये) कहते हैं कि अब रामका दास कहलाकर तो हृदयमें चातककी-सी टेक धारण कर [अर्थात् जैसे चातक मेघके सिवा और किसीसे याचना नहीं करता, उसी प्रकार तू भी रामको छोड़कर और किसीके आगे हाथ न पसार] अब सबसे बड़ा हंसका वेष धारण करके तो बगुला और कौओंकी-सी करनी छोड़ दे॥ ३२॥

भलि भारतभूमि, भलें कुल जन्मु, समाजु सरीरु भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा, हिम, मारुत, घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवानु सयान सोई, 'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै।
नतु और सबै बिषबीज बए, हर हाटक कामदुहा नहि कै॥

भारतवर्षकी पवित्र भूमि है, उत्तम (आर्य) कुलमें जन्म हुआ है, समाज

और शरीर भी उत्तम मिला है। गोसाईंजी कहते हैं—ऐसी अवस्थामें जो पुरुष क्रोध और कठोर वचन त्यागकर वर्षा, जाड़ा, वायु और घामको सहन करते हुए चातकके समान हठपूर्वक सर्वथा भगवान्‌को भजता है, वही चतुर है; अन्यथा और सब तो सुवर्णके हलमें कामधेनुको जोतकर (केवल) विष-बीज बोते हैं॥ ३३॥

जो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसीलसिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तनु छ्वै॥
गुनगेहु सनेहको भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै, 'तुलसी' जो रहै रघुबीरको ह्वै॥

तुलसीदासजी कहते हैं—मैं दोनों भुजाएँ उठाकर सभीसे कहता हूँ, जो (पुरुष) सब प्रकारके छल छोड़कर सच्चे भावसे श्रीरघुनाथजीका हो रहता है, वही पुण्यात्मा, पवित्र, साधु, सुजान और सुशील-शिरोमणि है; देवता और तीर्थ उसके मनाते ही आ जाते हैं और उसके शरीरका स्पर्श कर स्वयं भी पवित्र हो जाते हैं तथा वह सभी प्रकारके गुणोंका आकर और सबका स्नेहभाजन हो जाता है॥ ३४॥

विनय

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो।
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु, साहेबु चेरो॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देहको, गेहको नेहु, सनेहसों रामको होइ सबेरो॥

गोसाईंजी कहते हैं—जो पुरुष शरीर और घरकी ममताको त्यागकर जल्दी-से-जल्दी स्नेहपूर्वक भगवान् रामका हो जाता है, वही मेरी माता है, वही पिता है, वही भाई है, वही स्त्री है, वही पुत्र है और वही हितैषी है तथा वही मेरा सम्बन्धी, वही मित्र, वही सेवक, वही गुरु, वही देवता, वही स्वामी और वही सेवक (अर्थात् वही सब कुछ) है। अधिक कहाँतक बनाकर कहूँ, वह मुझे प्राणोंके समान प्रिय है॥ ३५॥

रामु हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुतु, स्वामि, सनेही।
रामकी सौंह, भरोसो है रामको, राम रँग्यो, रुचि राच्यो न केही॥
जीअत रामु, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जिऐ जगमें, 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही॥

श्रीरामचन्द्रजी ही मेरी माता हैं, वे ही पिता हैं तथा वे ही गुरु, बन्धु, साथी, सखा, पुत्र, प्रभु और प्रेमी हैं। श्रीरामचन्द्रकी शपथ है, मुझे तो रामका ही भरोसा है, मैं रामहीके रंगमें रँगा हुआ हूँ, दूसरेमें रुचिपूर्वक मेरा मन ही नहीं लगता। गोसाईंजी कहते हैं—जिसे जीते हुए भी रामसे ही स्नेह है और जो मरनेपर भी रामहीमें मिल जाता है, इस प्रकार सदैव जिसे रामका ही भरोसा है, वही संसारमें जीता है, नहीं तो और सब मरे हुए ही देह धारण किये डोलते हैं॥ ३६॥

रामप्रेम ही सार है

सियराम-सरूपु अगाध अनूप बिलोचन-मीननको जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नामु, हिएँ पुनि रामहिको थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है॥

श्रीराम और जानकीजीका अनुपम सौन्दर्य नेत्ररूपी मछलियोंके लिये अगाध जल है। कानोंमें श्रीरामकी कथा, मुखसे रामका नाम और हृदयमें रामजीका ही स्थान है। बुद्धि भी राममें लगी हुई है, रामहीतक गति है, रामहीसे प्रीति है और रामहीका बल है और सबकी बात तो नहीं कहता, परंतु तुलसीदासके मतमें तो जगत्‌में जीनेका फल यही है॥ ३७॥

दसरत्थके दानि सिरोमनि राम! पुरानप्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो, तुमसों मन भावत पायो न कैं॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती, जो कृपा करि दीनदयाल सुनैं।
जेहि देह सनेहु न रावरे सों, असि देह धराइ कै जायँ जियैं॥

हे दशरथजीके पुत्र दानियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने आपका पुराणोंमें प्रसिद्ध यश सुना है, नर, नाग, सुर तथा असुरोंमें जितने भी आपके याचक बने, उनमेंसे किसने आपसे अपना मनोवाञ्छित पदार्थ नहीं पाया? यदि दीनवत्सल प्रभु राम कृपा करके सुनें तो तुलसीदास हाथ जोड़कर विनय करता है कि जिस देहसे आपके प्रति स्नेह न हो ऐसा देह धारणकर जीवित रहना व्यर्थ है॥ ३८॥

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु, संत कहंत जे अंतु लहा है।
ताको सहै सठ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥
जानपनीको गुमान बड़ो, तुलसीके बिचार गँवार महा है।
जानकीजीवनु जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥

तुलसीदासजी अपने लिये कहते हैं कि अरे दुष्ट ! जिन संतोंने इस संसारकी थाह पा ली है, वे कहते हैं कि संसार झूठा है, झूठा है, झूठा है, परंतु उसके लिये करोड़ों संकट सहता है और दाँत निकालकर हाय-हाय करता है। तुझे अपने ज्ञानीपनेका बड़ा अभिमान है, परंतु तुलसीके विचारसे तो तू महागँवार है। यदि तूने ज्ञानके द्वारा जानकीजीवन (श्रीरामचन्द्रजी) को नहीं जाना तो तूने ज्ञानी कहलाते हुए भी (वस्तुत:) क्या जाना? [अर्थात् कुछ भी नहीं जाना] ॥ ३९ ॥

तिन्ह तें खर, सूकर, स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि रामसों नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ, बिषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवनु, जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै॥

गोसाईंजी कहते हैं कि जिन्हें श्रीरामजीसे स्नेह नहीं है, वे सचमुच पशु ही हैं; उनके केवल एक पूँछ और दो सींगोंकी कसर है। उनसे तो गधे, सूअर और कुत्ते भी अच्छे हैं; क्योंकि वे बेचारे जड़ होनेके कारण कुछ कहते तो नहीं। उनकी माँ दस महीनेतक उनके भारसे क्यों मरी ? बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? अथवा उसका गर्भ ही क्यों नहीं गिर गया ? हे जानकीनाथ ! जो पुरुष संसारमें तुम्हारा हुए बिना जीता है, उसका जीवन जल जाय (जला देनेके योग्य है) ॥ ४० ॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी, धनु धाम सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै॥

हाथी-घोड़ोंके समूह-के-समूह हैं, अनेक अच्छे-अच्छे वीर हैं, स्त्री-पुत्र सब भौंहें ताकते रहते हैं; पृथ्वी, धन, घर, शरीर—सब कुछ अच्छे हैं; देवलोकसे भी यह सुख बढ़कर है, किंतु गोसाईंजी कहते हैं कि यह सब निरर्थक और नि:सार है, अपना कुछ नहीं है। सब दो दिनका स्वप्न है। हे जानकीनाथ ! जो संसारमें तुम्हारा हुए बिना जीता है, उसका जीवन जल जाय॥ ४१ ॥

सुरराज-सो राज-समाजु, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप-सो धनु भो।
पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोमु-सो, पूषनु-सो, भवभूषनु भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै धीर बड़ो, बसहू मनु भो।
सब जाय, सुभायँ कहै तुलसी, जो न जानकी-जीवनको जनु भो॥

इन्द्रके समान राजसामग्री हो गयी, ब्रह्माके समान ऐश्वर्य हो गया और कुबेरके समान धन हो गया तथा वायुके समान (वेगवान्), अग्निके समान (तेजस्वी), यमराजके समान दण्डधारी, चन्द्रमाके समान शीतल एवं आह्लादकारी और सूर्यके समान संसारको प्रकाशित करनेवाला और संसारका भूषण बन गया हो; वायुको साधकर (प्राणायाम कर) योगाभ्यास करता हुआ समाधिके द्वारा बड़ा धीर हो गया हो और मन भी वशमें हो गया हो, तो भी गोसाईंजी सच्चे भावसे कहते हैं—यदि जानकीनाथका सेवक न हुआ तो सब व्यर्थ है॥ ४२॥

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े बिधि-से, मघवा-से महीप, बिषै-सुख-साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥

यदि मनुष्यने कमलनयन भगवान् श्रीरामको नहीं जाना तो वह रूपमें कामदेव-सा, प्रतापमें सूर्य-सा, शीलमें चन्द्रमाके समान, मानमें गणेशके सदृश तथा हरिश्चन्द्र-सा सच्चा, ब्रह्मा-जैसा महान्, विषय-सुखमें आसक्त इन्द्रके समान राजा, शुकदेव मुनि-सा महात्मा, शारदाके सदृश वक्ता और लोमशसे भी अधिक चिरजीवी हो जाय तो भी ऐसा होनेसे क्या लाभ हुआ?॥ ४३॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे, मद-अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौनके गौनहु तें बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा, तुलसी, जो पै जानकीनाथके रंग न राते॥

द्वारपर जंजीरोंसे जकड़े हुए तथा जिनके गण्डस्थलसे मद चू रहा है, ऐसे अनेकों हाथी झूमते हों और मनके समान तीव्र वेगवाले चञ्चल घोड़े हों जो वायुकी गतिसे भी बढ़ जाते हों, घरमें चन्द्रमुखी स्त्री देखती हो, बाहर बड़े-बड़े राजा खड़े हों, जो [बहुत अधिक होनेके कारण] भीतर न समा सकते हों—गोसाईंजी कहते हैं कि यदि जानकीपति (श्रीरामचन्द्रके) रंगमें न रँगा तो ऐसा होनेपर भी क्या हुआ?॥ ४४॥

राज सुरेस पचासकको बिधिके करको जो पटो लिखि पाएँ।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरताँ रतिको मदु नाएँ॥
संपति-सिद्धि सबै 'तुलसी' मनकी मनसा चितवैं चितु लाएँ॥
जानकीजीवनु जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाएँ॥

पचासों इन्द्रके (राज्यके) समान राज्यका ब्रह्माजीके हाथका लिखा हुआ पट्टा मिल गया हो, सपूत लड़के हों, पतिव्रता स्त्री हो जो अपनी सुन्दरतामें रतिके मदको भी नीचा दिखानेवाली हो, सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ और सिद्धियाँ उसके मनकी रुखको ध्यानपूर्वक देखती हुई खड़ी हों; किंतु गोसाईंजी कहते हैं कि यदि जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्र) को न जाना तो ऐसे जीव भी वास्तवमें जीव कहलानेके योग्य नहीं हैं॥ ४५॥

कृसगात ललात जो रोटिनको, घरवात घरें खुरपा-खरिया।
तिन्ह सोनेके मेरु-से ढेर लहे, मनु तौ न भरो, घरु पै भरिया॥
'तुलसी' दुखु दूनो दसा दुहुँ देखि, कियो मुखु दारिद को करिया।
तजि आस भो दासु रघुप्पतिको, दसरत्थको दानि दया-दरिया॥

जिनका शरीर अत्यन्त दुबला है, जो रोटीके लिये बिलबिलाते फिरते हैं और जिनके घरमें एक खुरपा और घास बाँधनेकी जाली ही सारी पूँजी है, उन्हें यदि सुमेरु पर्वतके बराबर भी सोनेके ढेर भी मिल गये, तो इससे उनका घर तो भर गया, परंतु मन नहीं भरा। गोसाईंजी कहते हैं कि मैंने दोनों अवस्थाओंमें दूना दुःख देखकर दरिद्रताका मुख काला कर दिया और सब आशा त्यागकर दशरथ-सुवन श्रीरामचन्द्रका दास हो गया। जो दयाके मानो दरिया हैं॥ ४६॥

को भरिहै हरिके रितएँ, रितवै पुनि को, हरि जौं भरिहै।
उथपै तेहि को, जेहि रामु थपै, थपिहै तेहि को, हरि जौं टरिहै॥
तुलसी यहु जानि हिएँ अपनें सपनें नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमयाँ कछु हानि न औरनकीं, जो पै जानकी-नाथु मया करिहै॥

जिसको भगवान्‌ने खाली कर दिया, उसे कौन भर सकता है और जिसको भगवान् भर देंगे, उसे कौन खाली कर सकता है। जिसे श्रीरामचन्द्रजी स्थापित कर देते हैं, उसे कौन उखाड़ सकता है और जिसे वे उखाड़ेंगे, उसे कौन स्थापित कर सकता है? तुलसीदास अपने हृदयमें यह जानकर स्वप्नमें भी कालसे भी नहीं डरेगा; क्योंकि यदि जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र कृपा करेंगे तो औरोंकी अकृपासे कुछ भी हानि नहीं होगी॥ ४७॥

ब्याल कराल, महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥
नेकु बिषादु नहीं प्रहलादहि कारन केहरिके बल हो रे।
कौनकी त्रास करै तुलसी जो पै राखिहै राम, तौ मारिहै को रे॥

विकराल सर्प, भयंकर विष, अग्नि और मतवाले हाथियोंके दाँतोंको भी तोड़ डाला। कष्ट भी सशङ्कित होकर भाग गया, जो सेवक (राजासे) डरते थे, उन्होंने भी (आज्ञा-पालनरूप) कर्तव्यसे मुँह मोड़ लिया। तो भी प्रह्लादको कुछ भी विषाद नहीं हुआ; क्योंकि वह नृसिंह भगवान्‌के बलके आश्रित था। अतः अब तुलसीदास ही किसका भय करे। यदि रामजी रक्षा करेंगे तो उसे कौन मार सकता है!॥ ४८॥

कृपाँ जिनकीं कछु काजु नहीं, न अकाजु कछू जिनकें मुखु मोरें।
करैं तिनकी परवाहि ते, जो बिनु पूँछ-बिषान फिरैं दिन दौरें॥
तुलसी जेहिके रघुनाथसे नाथु, समर्थ सुसेवत रीझत थोरें।
कहा भवभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनीं तिनसों तिनु तोरें॥

जिनकी कृपासे कुछ काम नहीं बनता और न जिनके मुख मोड़नेसे कुछ हानि ही होती है, उनकी परवा वही लोग करेंगे जो बिना सींग-पूँछके होकर भी सर्वदा दौड़े फिरते हैं [अर्थात् पशु न होनेपर भी अपने वास्तविक लक्ष्यको छोड़कर रात-दिन पेटकी ही चिन्तामें लगे रहते हैं] गोसाईंजी कहते हैं कि जिसके श्रीरामचन्द्रके समान समर्थ स्वामी हैं, जो थोड़ी-सी सेवा करनेपर ही रीझ जाते हैं, उसे संसारकी क्या चिन्ता पड़ी है। वह तो ऐसे लोगोंसे सम्बन्ध तोड़कर पृथ्वीपर विचरता है॥ ४९॥

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाबिषु, ब्याधि, दवा-अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी', सुत, मातु, पिता, हित, बंधु न नेरे॥
राखिहैं रामु कृपालु तहाँ, हनुमानु-से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतलमें रघुनायकु एकु सहायकु मेरे॥

वनमें, पर्वतपर, जलमें, आँधीमें, महाविष खा लेनेपर, रोगमें, अग्नि और शत्रुसे घिर जानेपर तथा गोसाईंजी कहते हैं, जहाँ करोड़ों संकट हों और माता-पिता, पुत्र, मित्र और भाई-बन्धु कोई समीप न हों, वहाँ भी दयालु भगवान् राम, जिनके हनुमान्‌जी-जैसे सेवक हैं, रक्षा करेंगे। आकाश, पाताल और पृथ्वीमें एक श्रीरघुनाथजी ही मेरे सहायक हैं॥ ५०॥

जबै जमराज-रजायसतें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तातु न मातु, न स्वामि-सखा, सुत-बंधु बिसाल बिपत्ति-बँटैया॥
साँसति घोर, पुकारत आरत कौन सुनै, चहुँ ओर डटैया।
एकु कृपाल तहाँ 'तुलसी' दसरत्थको नंदनु बंदि-कटैया॥

जब यमराजकी आज्ञासे मेरे गलेको बाँधकर यमदूत मुझे ले चलेंगे, उस समय वहाँ न बाप, न माँ, न स्वामी, न मित्र, न पुत्र और न भाई ही उस भारी विपत्तिको बँटानेवाले होंगे। वहाँ घोर कष्ट सहना होगा। उस आर्त्त-पुकारको सुनेगा भी कौन? चारों ओर डाँटनेवाले [यमदूत] ही होंगे। गोस्वामीजी कहते हैं कि वहाँ केवल एक दयानिधान दशरथकुमार ही बन्धन काटनेवाले होंगे॥ ५१॥

जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत-टेवैया।
जहँ धार भयंकर, वार न पार, न बोहितु नाव, न नीक खेवैया॥
'तुलसी' जहँ मातु-पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन रामु कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥

जहाँ यमयातना देनेवाले करोड़ों यमदूत हैं, घोर वैतरणी नदी है, जिसमें दाँतोंकी धार तेज करनेवाले (काटनेवाले) जलजन्तु हैं, जिसकी भयंकर धारा है और जिसका कोई वार-पार नहीं है, जिसमें न जहाज है, न नाव और न सुचतुर नाविक ही है; इसके सिवा जहाँ माता, पिता, सखा अथवा कोई अवलम्बन देनेवाला भी नहीं है, वहाँ श्रीगोसाईंजी कहते हैं—बिना ही कारण कृपा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही अपनी विशाल भुजासे पकड़कर निकाल लेनेवाले हैं॥ ५२॥

जहाँ हित स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु, न बापु, न मैया।
काय-गिरा-मनके जनके अपराध सबै छलु छाड़ि छमैया॥
तुलसी! तेहि काल कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया॥
जहाँ सब संकट, दुर्घट सोचु, तहाँ मेरो साहेबु राखै रमैया॥

श्रीगोसाईंजी कहते हैं कि जहाँ कोई हितैषी स्वामी नहीं है और न साथमें मित्र, स्त्री, पुत्र,भाई, बाप या माँ ही है, वहाँ कृपालु श्रीरामचन्द्रके बिना अपने जनके शरीर, मन और वचनद्वारा किये हुए समस्त अपराधोंको छल छोड़कर क्षमा करनेवाला तथा उस दारुण दुःखका नाश करनेवाला दूसरा कौन हो सकता है। जहाँ ऐसे-ऐसे सब प्रकारके संकट और दुर्घट सोच हैं, वहाँ मेरे स्वामी जगत्में रमण करनेवाले श्रीरामचन्द्र ही मेरी रक्षा करते हैं॥ ५३॥

तापसको बरदायक देव, सबै पुनि बैरु बढ़ावत बाढ़ें।
थोरेंहि कोपु, कृपा पुनि थोरेंहि, बैठि कै जोरत, तोरत ठाढ़ें॥
ठोंकि-बजाइ लखें गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़ें।
आरतके हित नाथु अनाथके रामु सहाय सही दिन गाढ़ें॥

देवतालोग तपस्वियोंको वर देनेवाले हैं, किंतु बढ़नेपर वे सब वैर बढ़ाते हैं। थोड़ेहीमें कोप और थोड़ेहीमें कृपा करते हैं। वे बैठकर प्रीति जोड़ते और खड़े होते ही उसे तोड़ देते हैं (अर्थात् उनकी प्रीति बहुत थोड़ी देर टिकनेवाली होती है)। हम किस-किससे और कहाँतक दाँत निकालकर कहें। गजराजने सबको ठोंक-बजाकर देख लिया, दुःखियोंके मित्र, अनाथोंके नाथ तथा विपत्तिके दिनोंमें सच्चे सहायक श्रीरामचन्द्र ही हैं॥ ५४॥

जप, जोग, बिराग, महामख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि-सिद्ध, सुरेसु, गनेसु, महेसु-से सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम-ग्यान, पुरान पढ़ै, तपसानलमें जुगपुंज जरै।
मनसों पनु रोपि कहै तुलसी, रघुनाथ बिना दुख कौन हरै॥

चाहे कोई जप, योग, वैराग्य, बड़े-बड़े यज्ञानुष्ठान, दान, दया, इन्द्रिय-निग्रह आदि करोड़ों उपाय करे; मुनि, सिद्ध, सुरेश (इन्द्र), गणेश और महेश-जैसे देवताओंका अनेकों जन्मतक सेवन करते-करते मर जाय, वेद-शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करे और पुराणोंका अध्ययन करे। अनेकों युगोंतक तपस्याकी अग्निमें जलता रहे, परंतु तुलसी मनसे प्रण रोपकर कहता है कि श्रीरामचन्द्रके बिना कौन दुःख दूर कर सकता है?॥ ५५॥

पातक-पीन, कुदारिद-दीन मलीन धरैं कथरी-करवा है।
लोकु कहै, बिधिहूँ न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै॥
रामको किंकरु सो तुलसी, समुझेंहि भलो, कहिबो न रवा है।
ऐसेको ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिनु बानरके चरवाहै॥

लोक [मेरे विषयमें] कहता था कि यह पापोंमें बढ़ा हुआ एवं कुत्सित दरिद्रताके कारण दीन है तथा मलिन कन्था और करवा धारण किये है। विधाताने इसके भाग्यमें कुछ भी नहीं लिखा तथा यह सपनेमें भी अपने बलपर नहीं चलता था। परंतु आज वही तुलसी श्रीरामचन्द्रजीका किंकर हो गया। इस बातको समझना ही अच्छा है, कहना उचित नहीं है। वह ऐसे (दीन और पापी) से ऐसा (महामुनि) बिना वानरोंके चरवाहे (श्रीरामचन्द्रजी) को भजे नहीं हुआ॥ ५६॥

मातु-पिताँ जग जाइ तज्यो बिधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादरभाजन, कादर, कूकर-टूकन लागि ललाई॥
रामु-सुभाउ सुन्यो तुलसीं प्रभुसों कह्यो बारक पेटु खलाई।
स्वारथको परमारथको रघुनाथु सो साहेबु, खोरि न लाई॥

माता-पिताने जिसको संसारमें जन्म देकर त्याग दिया, ब्रह्माने भी जिसके भाग्यमें कुछ भलाई नहीं लिखी, उस नीच निरादरके पात्र, कायर, कुक्कुरके मुँहके टुकड़ेके लिये ललचानेवाले तुलसीदासने जब श्रीरामचन्द्रका स्वभाव सुना और एक बार पेट खलाकर [अपना सारा दुःख] कहा तो प्रभु रघुनाथजीने उसके स्वार्थ और परमार्थको सुधारनेमें तनिक भी कोर-कसर नहीं रखी॥ ५७॥

पाप हरे, परिताप हरे, तनु पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंसु कियो बकतें, बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना-अधिकाई॥
कालु बिलोकि कहै तुलसी, मनमें प्रभुकी परतीति अघाई।
जन्मु जहाँ, तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह-सगाई॥

तुलसीदासजी कहते हैं—हे श्रीराम ! आपने मेरे पाप नष्ट कर दिये, सारे संताप हर लिये, शरीर पूज्य बन गया, हृदयमें शीतलता आ गयी और मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, आपने मुझे बगुले (दम्भी) से हंस (विवेकी) बना दिया, आपकी कृपाकी अधिकताका कहाँतक वर्णन करूँ। अब समय देखकर तुलसी कहता है कि मेरे मनमें प्रभुका पूरा भरोसा है, अत: जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो वहाँ आपसे शरीर रहनेतक प्रेमके सम्बन्धका निर्वाह होता रहे॥ ५८॥

लोग कहैं, अरु हौंहु कहौं, जनु खोटो-खरो रघुनायकहीको।
रावरी राम! बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायकहीको॥
कै यह हानि सहौ, बलि जाउँ, कि मोहू करौ निज लायकहीको।
आनि हिएँ हित जानि करौ, ज्यों हौं ध्यानु धरौं धनु-सायकहीको॥

लोग कहते हैं और मैं भी कहता हूँ कि खोटा या खरा मैं श्रीरामचन्द्रजीहीका सेवक हूँ ! हे राम ! इससे आपकी तो बड़ी तौहीन हुई, परंतु आपके सदृश स्वामीका सेवक होनेका जो यश मुझे प्राप्त हुआ, वह मेरे हृदयको तो सुख देनेवाला ही है। मैं बलिहारी जाऊँ, अब या तो आप इस हानिको सहिये अथवा मुझे ही अपनी सेवाके योग्य बना लीजिये। अपने हृदयमें विचारकर और मेरे लिये हितकारी जानकर ऐसा ही कीजिये, जिससे मैं आपके धनुषधारी रूपका ही ध्यान कर सकूँ [अर्थात् आपको छोड़कर किसी और पदार्थकी ओर मेरा चित्त ही न जाय]॥ ५९॥

आपु हौं आपुको नीकें कै जानत, रावरो राम! भरायो-गढ़ायो।
कीरु ज्यौं नामु रटै तुलसी, सो कहै जगु जानकीनाथ पढ़ायो॥

सोई है खेदु, जो बेदु कहै, न घटै जनु जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खरको असवार, तिहारोइ नामु गयंद चढ़ायो॥

मैं स्वयं अपनेको अच्छी तरह जानता हूँ। हे राम ! मैं तो आपहीका रचा और बढ़ाया हुआ हूँ। यह तुलसीदास सुग्गेकी भाँति नाम रटता है, उसपर संसार यही कहता है कि यह [स्वयं] भगवान् जानकीनाथका पढ़ाया हुआ है। इसीका मुझे खेद है। किंतु वेद कहता है कि जिस मनुष्यको रघुनाथजीने बढ़ा दिया, वह कभी घट नहीं सकता। मैं सदासे गधेपर ही चढ़नेवाला (अत्यन्त निन्दनीय आचरणोंवाला) था, आपके नामने ही मुझे हाथीपर चढ़ा दिया है (अर्थात् इतना गौरव प्रदान किया है) ॥ ६० ॥

छारतें सँवारि कै पहारहू तें भारी कियो,
गारो भयो पंचमें पुनीत पच्छु पाइ कै।
हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै,
पेटु भरौं, राम! रावरोई गुनु गाइकै॥
आपने निवाजेकी पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै।
पालिकै कृपाल! ब्याल-बालको न मारिए,
औ काटिए न नाथ! बिषहूको रुखु लाइ कै॥

आपने मुझ धूलके समान तुच्छ प्राणीको सँभालकर पहाड़से भी भारी (गौरवान्वित) बना दिया और आपका पवित्र पक्ष पाकर मैं पंचोंमें बड़ा हो गया। मैं तो अपनी अधमतामें जैसा पहले था, वैसा ही अब भी हूँ। हे राम ! बस, आपका ही गुण गाकर पेट पालता हूँ। परंतु हे महाराज ! आप अपनी कृपाकी लाज रखिये और मेरी ओर देखकर क्रोध करके न बैठ जाइये। हे कृपालु ! सर्पके बालकको भी पाल-पोसकर नहीं मारना चाहिये और न विषका वृक्ष भी लगाकर उसे काटना चाहिये॥ ६१ ॥

बेद न पुरान-गानु, जानौं न बिग्यानु ग्यानु,
ध्यान-धारना-समाधि-साधन-प्रबीनता।
नाहिन बिरागु, जोग, जाग भाग तुलसीकें,
दया-दान दूबरो हौं, पापही की पीनता॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोस-कोसु-मोसो कौन?
कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै मलीनता।

एकु ही भरोसो राम! रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु! मेरी दीनता॥

मैं न तो वेद या पुराणोंका गान जानता हूँ और न विज्ञान अथवा ज्ञान ही जानता हूँ और न मैं ध्यान, धारणा, समाधि आदि साधनामें प्रवीणता ही रखता हूँ। तुलसीके भागमें वैराग्य, योग और यज्ञादि नहीं हैं। मैं दया और दानमें दुर्बल हूँ [अर्थात् दान और दयासे रहित हूँ] तथा पापमें पुष्ट हूँ। मेरे समान लोभ, मोह, काम और क्रोधरूप दोषोंका भण्डार कौन है? कलियुगने भी मुझसे ही मलिनता सीखी है। हाँ, एक ही भरोसा मुझे है कि मैं आपका कहलाता हूँ। आप दीनोंके बन्धु और दयालु हैं। मेरी यह दीनता है॥ ६२॥

रावरो कहावौं, गुनु गावौं राम! रावरोइ,
रोटी द्वै हौं पावौं राम! रावरी हीं कानि हौं।
जानत जहानु, मन मेरेहूँ गुमानु बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥
पाँचकी प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई,
तुम्ह अपनायो हौं तबै हीं परि जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि छोलि-छालि कुंदकी-सी भाईं बातैं
जैसी मुख कहौं, तैसी जीयँ जब आनिहौं॥

हे राम! मैं आपका कहलाता हूँ और आपहीका गुण गाता हूँ और हे रघुनाथजी! आपहीके लिहाजसे मुझे दो रोटियाँ भी मिल जाती हैं। संसार जानता है और मेरे मनमें भी बड़ा अभिमान है कि मैंने दूसरेको न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा। मुझे न पंचोंका ही विश्वास है और न अपना ही भरोसा है, मैं गढ़-गुढ़ और छील-छालकर खरादपर चढ़ायी हुई-सी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाता हूँ। वैसी ही जब हृदयमें भी ले आऊँगा तब समझूँगा कि आपने मुझे अपनाया है॥ ६३॥

बचन, बिकारु, करतबउ खुआर, मनु
बिगत-बिचार, कलिमलको निधानु है।
रामको कहाइ, नामु बेचि-बेचि, खाइ सेवा-
संगति न जाइ, पाछिलेको उपखानु है॥
तेहू तुलसीको लोगु भलो-भलो कहै, ताको
दूसरो न हेतु, एकु नीकें कै निदानु है।

लोकरीति बिदित बिलोकिअत जहाँ-तहाँ,
स्वामीकें सनेहँ स्वानहू को सनमानु है॥

(जिसकी) बोलीमें विकार है, करनी भी बहुत बुरी है तथा मन भी विवेकशून्य और कलिमलका भण्डार है। जो श्रीरामचन्द्रजीका कहलाकर नामको बेंच-बेंचकर खाता है और जैसी कि पुरानी कहावत है, सेवा और सत्संगमें प्रवृत्त नहीं होता। उस तुलसीको भी लोग भला कहते हैं। इसका कोई दूसरा कारण नहीं है, केवल एक निश्चित हेतु है। यह प्रसिद्ध लोकरीति और जहाँ-तहाँ देखनेमें भी आता है कि स्वामीका जहाँ-तहाँ स्नेह होनेपर उसके कुत्तेका भी सम्मान होता है॥ ६४॥

नाम-विश्वास

स्वारथको साजु न समाजु परमारथको,
मोसो दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचिहूँ भलाई भूलि भाल है॥
रावरी सपथ, रामनाम ही की गति मेरें,
इहाँ झूठो, झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
तुलसी को भलो पै तुम्हारें ही किएँ कृपाल,
कीजै न बिलंबु, बलि, पानीभरी खाल है॥

मेरे पास न तो कोई स्वार्थसाधनका ही सामान है और न परमार्थकी ही सामग्री है। विश्वब्रह्माण्डमें मेरे समान कोई दूसरा दगाबाज भी नहीं है। सुकर्म तो न मैं करके आया हूँ, न करता हूँ और न करूँगा ही ! ब्रह्माने भूलकर भी मेरे भाग्यमें भलाई नहीं लिखी। आपकी शपथ है, हे रामजी ! मुझको केवल आपके नामहीकी गति है। जो यहाँ (आपके सामने) झूठा है, वह तो तीनों लोक और तीनों कालमें झूठा ही है। हे कृपालो ! तुलसीकी भलाई तो तुम्हारे ही किये होगी, बलिहारी जाऊँ, अब विलम्ब न कीजिये, क्योंकि मेरी दशा ठीक पानीसे भरी हुई खालके समान है। अर्थात् जैसे पानीभरी खाल बहुत जल्दी सड़ जाती है, वैसे ही मेरे भी नष्ट होनेमें देरी नहीं है॥ ६५॥

रागको न साजु, न बिरागु, जोग, जाग जियँ
काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाटको।

मनोराजु करत अकाजु भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर, पै लहै न टूकु टाटको॥
भयो करतारु बड़े कूरको कृपालु, पायो
नामप्रेमु-पारसु, हौं लालची बराटको।
'तुलसी' बनी है राम ! रावरें बनाएँ, ना तो
धोबी-कैसो कूकरु न घरको, न घाटको॥

मेरे पास न तो राग अर्थात् सांसारिक सुख-भोगकी सामग्री है और न मेरे जीमें वैराग्य, योग या यज्ञ ही है, और यह शरीर कुचाल चलना नहीं छोड़ता। मनोराज्य (वासनाएँ) करते-करते आजतक हानि ही होती रही। यह चाहता तो अच्छे-अच्छे वस्त्र है, परंतु इसे मिलता टाटका टुकड़ा भी नहीं। हे जगत्कर्ता प्रभो! आप इस अत्यन्त कुटिलपर भी कृपालु हुए, मुझ कौड़ी (तुच्छ भोगों) के लालचीने भगवन्नामका प्रेमरूप पारस पाया। हे श्रीरामजी ! यह सब आपहीके बनाये बनी है, नहीं तो धोबीके कुत्तेके समान मैं न घरका था और न घाटका ही (अर्थात् न मैं इस लोकको सुधार सकता था, न परलोकको)॥ ६६॥

ऊँचो मनु, ऊँची रुचि, भागु नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है।
स्वारथु अगमु, परमारथकी कहा चली,
पेटकीं कठिन जगु जीवको जवारु है॥
चाकरी न आकरी, न खेती, न बनिज-भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
तुलसीकी बाजी राखी रामहीकें नाम, न तु
भेंट पितरन को न मूड़हू में बारु है॥

इसका मन ऊँचा है तथा रुचि भी ऊँची है, परंतु भाग्य इसका अत्यन्त खोटा है। यह लोक-व्यवहारके लायक भी नहीं है तथा बड़ा ही नटखट और गप्पी है। इसके लिये तो स्वार्थ भी अगम है, परमार्थकी तो बात ही क्या है। पेटकी कठिनाईके कारण इसे संसार जीका जंजाल हो रहा है। यह न तो कोई चाकरी ही करता है और न खान खोदनेका काम करता है; इसके न खेती है, न व्यापार है। न यह भीख माँगता है और न कोई अन्य प्रकारका धंधा या पेशा ही जानता है। तुलसीकी बाजी रामनामहीने रखी है, अन्यथा इसके

पास तो पितरोंको भेंट चढ़ानेके लिये सिरपर बाल भी नहीं है॥ ६७॥

अपत-उतार, अपकारको अगारु, जग
जाकी छाँह छुएँ सहमत ब्याध-बाघको।
पातक-पुहुमि पालिबेको सहसाननु सो,
काननु कपटको, पयोधि अपराधको॥
तुलसी-से बामको भो दाहिनो दयानिधानु,
सुनत सिहात सब सिद्ध, साधु साधको।
रामनाम ललित-ललामु कियो लाखनिको,
बड़ो कूर कायर कपूत-कौड़ी आधको॥

यह नीच निर्लज्जोंकी न्योछावर और अपकारोंका आगार है। जिसकी छायाका स्पर्श होनेपर संसारमें व्याध और हिंसक जीव भी सहम जाते हैं। पापरूप पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिये यह शेषजीके समान है तथा कपटका वन और अपराधोंका समुद्र है। तुलसी-जैसे उलटी प्रकृतिके पुरुषके लिये दयानिधान (श्रीरामचन्द्रजी) दाहिने हो गये—यह सुनकर सब सिद्ध, साधु और साधकलोग सिहाते हैं। रामनामने बड़े कुटिल, कायर, कपूत और आधी कौड़ीके मनुष्यको भी लाखोंका सुन्दर रत्न बना दिया॥ ६८॥

सब अंग हीन, सब साधन बिहीन, मन-
बचन मलीन, हीन कुल-करतूति हौं।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ग्यानहीन, हीन भाग हूँ बिभूति हौं॥
तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनामु,
जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनामसों प्रतीति रामनामकी,
प्रसाद रामनामकें पसारि पाय सूतिहौं॥

मैं (योगके आठों) अङ्गोंसे हीन हूँ, सब साधनोंसे रहित हूँ, मन-वचनसे मलिन हूँ तथा कुल और कर्मोंमें भी बड़ा पतित हूँ। मैं बुद्धि-बलहीन, भाव और भक्तिसे रहित, गुणहीन, ज्ञानहीन तथा भाग्य और ऐश्वर्यसे भी रहित हूँ। इस दीन तुलसीदासकी हीन अवस्थाका उद्धार करनेवाला तो रामका नाम ही है। जिसे जिह्वासे जपकर मैं रामजीको भी छल चुका हूँ। मुझे रामनामसे ही प्रीति है,

रामनाममें ही विश्वास है और मैं रामनामकी ही कृपासे पैर पसारकर (निश्चिन्त होकर) सोता हूँ॥ ६९॥

मेरें जान जबतें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तबतें बेसाह्यो दाम लोह, कोह, कामको।
मन तिन्हीकी सेवा, तिन्ही सों भाउ नीको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलामु रामको'॥
नाथहूँ न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभुहू तें प्रबल प्रतापु प्रभुनामको।
आपनीं भलाई भलो कीजै तौ भलाई, न तौ
तुलसीको खुलैगो खजानो खोटे दामको॥

मेरी समझसे जबसे मैं जगत्‌में जीव होकर जन्मा हूँ, तबसे मुझे लोभ, क्रोध और कामने दाम देकर मोल ले लिया है। (अतएव) मनसे उन्हींकी सेवा होती है और उन्हींसे गहरा प्रेम है; परंतु बात बनाकर कहता हूँ कि मैं तो श्रीरामका गुलाम हूँ। हे नाथ! आपने भी (अयोग्य समझकर) नहीं अपनाया, किंतु लोकमें झूठी प्रसिद्धि हो गयी (कि मैं रामका गुलाम हूँ), परंतु प्रभुसे भी प्रभुके नामका प्रताप अधिक प्रचण्ड है। (अतः) अपनी भलाईसे यदि आप मेरा भला कर दें तो अच्छा ही है, नहीं तो तुलसीके कपटका खजाना खुलेगा ही॥ ७०॥

जोग न बिरागु, जप, जाग, तप, त्यागु, ब्रत,
तीरथ न धर्म जानौं, बेदबिधि किमि है।
तुलसी-सो पोच न भयो है, नहि ह्वैहै कहूँ,
सोचैं सब, याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं॥
मेरें तौ न डरु, रघुबीर! सुनौ, साँची कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहैं।
भले सुकृतीके संग मोहि तुलाँ तौलिए तौ,
नामकें प्रसाद भारु मेरी ओर नमिहै॥

मैं न तो अष्टाङ्गयोग जानता हूँ और न वैराग्य, जप, यज्ञ, तप, त्याग, व्रत, तीर्थ अथवा धर्म ही जानता हूँ। मैं यह भी नहीं जानता कि वेदका विधान कैसा है। तुलसीके समान पामर न तो कोई हुआ है और न कहीं होगा। (इसीलिये) सभी सोचते हैं, न जाने, प्रभु इसके पापोंको कैसे क्षमा करेंगे। किंतु हे रघुनाथजी!

सुनिये, मैं (आपसे) सच कहता हूँ, मुझे कुछ भी डर नहीं है। (यदि आप मुझे क्षमा कर देंगे तो) दुष्ट लोग तो अवश्य आपसे अप्रसन्न होंगे; किंतु सज्जनोंको इससे कुछ भी दुःख नहीं होगा। यदि आप मुझे किसी बड़े पुण्यवान्‌के साथ तराजूपर तोलेंगे तो आपके नामकी कृपासे मेरी ओरका पलड़ा ही झुकता हुआ रहेगा॥ ७१॥

जातिके, सुजातिके, कुजातिके पेटागि बस
खाए टूक सबके, बिदित बात दुनीं सो।
मानस-बचन-कायँ किए पाप सतिभायँ,
रामको कहाइ दासु दगाबाज पुनी सो।
रामनामको प्रभाउ, पाउ, महिमा, प्रतापु,
तुलसी-सो जग मनिअत महामुनी-सो।
अतिहीं अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़! एतो बड़ो अचिरिजु देखि-सुनी सो॥

मैंने पेटकी आगके कारण (अपनी) जाति, सुजाति, कुजाति सभीके टुकड़े (माँग-माँगकर) खाये हैं—यह बात संसारमें (सबको) विदित है; मन, वचन और कर्मसे सच्चे भावसे अर्थात् स्वाभाविक ही (बहुत-से) पाप किये और रामजीका दास कहलाकर भी दगाबाज ही बना रहा। अब रामनामका प्रभाव, पैठ, महिमा और प्रताप देखिये, जिसके कारण तुलसी-जैसे (दुष्ट) को भी लोग महामुनि (वाल्मीकि) के समान मानते हैं। रे मूढ़ ! तू बड़ा ही अभागा है; इतना बड़ा अचरज देख-सुनकर भी श्रीरामके चरणोंमें प्रीति नहीं करता॥ ७२॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनकको।
बारेतें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनकको॥
तुलसी सो साहेब समर्थको सुसेवकु है,
सुनत सिहात सोचु बिधिहू गनकको।
नामु राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरीतें गरु तृनतें तनकको॥

भिक्षा माँगनेवाले (ब्राह्मण) कुलमें तो उत्पन्न हुआ, जिसके उपलक्ष्यमें बधावा बजाया गया। यह सुनकर माता-पिताको परिताप और कष्ट हुआ। फिर

बालपनसे ही अत्यन्त दीन होनेके कारण द्वार-द्वार ललचाता और बिलबिलाता फिरा, चनेके चार दानोंको ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप चार फल समझता था। वही तुलसी अब समर्थ स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका सुसेवक है—यह सुनकर ब्रह्मा-जैसे गणक (ज्योतिषी) को भी चिन्ता और ईर्ष्या होती है। हे राम ! मालूम नहीं, आपका नाम चतुर है या पागल, जो तृणसे भी तुच्छ पुरुषको पर्वतसे भी भारी बना देता है॥ ७३॥

बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत,
रामनाम ही सों रीझें सकल भलाई है।
कासीहूँ मरत उपदेसत महेसु सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाछीको ललात जे, ते रामनामकें प्रसाद,
खात खुनसात सोंधे दूधकी मलाई है।
रामराज सुनिअत राजनीतिकी अवधि,
नामु राम! रावरो तौ चामकी चलाई है॥

वेद-पुराण भी कहते हैं और लोकमें भी देखा जाता है कि रामनामहीसे प्रेम करनेमें सब तरहकी भलाई है। काशीमें मरनेपर महादेवजी भी जीवोंको उसीका उपदेश करते हैं। उन्होंने अन्य अनेकों साधनोंकी ओर न दृष्टि दी है और न उन्हें चित्तहीमें स्थान दिया है। जो छाछको ललचाते थे, वे रामनामके प्रसादसे सुगन्धित दूधकी मलाई खानेमें भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें राजनीतिकी पराकाष्ठा सुनी जाती है; किंतु हे रामजी ! आपके नामने तो चमड़ेका सिक्का चला दिया अर्थात् अधमोंको भी उत्तम बना दिया॥ ७४॥

सोच-संकटनि सोचु संकटु परत, जर
जरत, प्रभाउ नाम ललित ललामको।
बूड़िऔ तरति, बिगरीऔ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाउ बिधि बामको॥
भागत अभागु, अनुरागत बिरागु, भागु
जागत आलसि तुलसीहू-से निकामको।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनामको॥

अति सुन्दर और श्रेष्ठ रामनामका ऐसा प्रभाव है कि उससे शोच और संकटोंको शोच तथा संकट पड़ जाता है, ज्वर भी जलने लगते हैं, डूबी हुई (नौका) भी तर जाती है, बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है, ऐसे पुरुषको देखकर वाम विधाताका स्वभाव भी अनुकूल हो जाता है, अभाग्य भाग जाता है, वैराग्य प्रेम करने लगता है और तुलसी-से निकम्मे और आलसीका भी भाग्य जाग जाता है (लूटनेको आयी हुई लुटेरोंकी) सेना भी उलटे रक्षक और हितकारी बन जाती है तथा राम-नामका जप करनेसे आयी हुई मृत्यु भी टल जाती है॥ ७५॥

आँधरो अधम जड़ जाजरो जराँ जवनु
सूकरकें सावक ढकाँ ढकेल्यो मगमें।
गिरो हिएँ हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो',
हाय! हाय! करत परीगो कालफगमें॥
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोकपतिलोक गयो
नामकें प्रताप, बात बिदित है जगमें।
सोई रामनामु जो सनेहसों जपत जनु,
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमें॥

एक सूअरके बच्चेने किसी अंधे, अधम, मूर्ख और बुढ़ापेसे जर्जर यवनको राहमें धक्का देकर ढकेल दिया। इससे वह गिर गया और हृदयमें भयभीत होकर 'अरे! हरामने मार डाला, हरामने मार डाला' इस प्रकार हाय-हाय करते-करते कालके फंदेमें पड़ गया अर्थात् मर गया। गोसाईंजी कहते हैं कि यह यवन नामके प्रतापसे सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर त्रिलोकीनाथ भगवान् रामके धामको चला गया, यह बात जगत्में प्रसिद्ध है। उसी रामनामको जो मनुष्य प्रेमपूर्वक जपता है, उसकी अगाध महिमा कैसे कही जा सकती है॥ ७६॥

जापकी न तप-खपु कियो, न तमाइ जोग,
जाग न बिराग, त्याग, तीरथ न तनको।
भाईको भरोसो न खरो-सो बैरु बैरीहू सों,
बलु अपनो न, हितू जननी न जनको॥
लोकको न डरु, परलोकको न सोचु, देव-
सेवा न सहाय, गर्बु धामको न धनको।
रामही के नामतें जो होई सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाउ कछु तुलसीके मनको॥

मैंने न तो जप किया, न तपस्याका क्लेश सहा और न मुझे योग, यज्ञ, वैराग्य, त्याग अथवा तीर्थकी ही इच्छा है। मुझे भाईका भी भरोसा नहीं है और न वैरीसे भी जरा-सी शत्रुता है। मुझे अपना बल नहीं है और माता-पिता भी अपने हितैषी नहीं हैं, परंतु मुझे न तो इस लोकका डर है और न परलोकका ही सोच है। देवसेवाका भी मुझे बल नहीं है और न मुझे धन-धामका ही गर्व है। तुलसीके मनका कुछ इसी तरहका स्वभाव है कि भगवान् रामके नामसे ही जो कुछ होगा, वही उसे अच्छा लगता है॥ ७७॥

ईसु न, गनेसु न, दिनेसु न, धनेसु न,
सुरेसु, सुर, गौरि, गिरापति नहि जपने।
तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबेको,
बैठें-उठें, जागत-बागत, सोएँ, सपनें॥
तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जियँ कीजिए जु अपने।
जानकीरमन मेरे! रावरें बदनु फेरें,
ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने॥

मुझे शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्रादि देवता, गौरी अथवा ब्रह्माको नहीं जपना है। संसारसे तरनेके लिये उठते-बैठते, जागते, घूमते, सोते एवं स्वप्न देखते—बस, आपके नामका ही भरोसा है। तुलसी यद्यपि बावला है; परंतु आपकी सौगन्ध, है आपका ही। इस बातको अपने चित्तमें जानकर आप भी उसे अपना लीजिये। हे मेरे जानकीनाथ! आपके मुख फेर लेनेपर मेरे लिये कहीं ठौर-ठिकाना नहीं रहेगा, मैं कहाँ रहूँगा? सभी बिराने हैं॥ ७८॥

जाहिर जहानमें जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिए बिबुधधेनु, रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकालमें कृपाल! तेरे
नामकें प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥
तुलसी तिहारो मन-बचन-करम, तेंहि
नातें नेह-नेमु निज ओरतें निबाहिए।
रंकके नेवाज रघुराज! राजा राजनिके,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥

यह जमाना संसारमें इस बातके लिये प्रसिद्ध हो गया है कि कामधेनुको बेचकर गधी खरीदी जाने लगी। ऐसे भयंकर कलिकालमें भी हे कृपालो ! आपके नामके प्रतापसे त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक)से शरीर दग्ध नहीं होता। गोसाईंजी कहते हैं, मन-वचन-कर्मसे मैं आपका (भक्त) हूँ। इसी नाते आप अपनी ओरसे भी स्नेहके नियमको निभाइये। हे रंकोंपर कृपा करनेवाले राजाओंके राजा महाराज रघुनाथजी! हमें तो आपकी उमर बड़ी चाहिये [फिर कोई खटका नहीं है] ॥ ७९ ॥

स्वारथ सयानप, प्रपंचु परमारथ,
कहायो राम ! रावरो हौं, जानत जहान है।
नामकें प्रताप, बाप ! आजु लौं निबाही नीकें,
आगेको गोसाईं ! स्वामी सबल सुजान है॥
कलिकी कुचालि देखि दिन-दिन दूनी, देव!
पाहरूई चोर हेरि हिय हहरान है।
तुलसीकी, बलि, बार-बारहीं सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधानु सदा सावधान है॥

मेरे स्वार्थके कामोंमें चतुराई और परमार्थके कामोंमें पाखण्ड भरा हुआ है। हे रामजी ! तो भी मैं आपका कहलाता हूँ और सारा संसार भी यही जानता है। हे पिता ! आपने नामके प्रतापसे आजतक अच्छी निभा दी और हे स्वामिन् ! आगेके लिये भी प्रभु समर्थ और सर्वज्ञ हैं। हे देव ! कलियुगकी कुचालको दिन-दिन दूनी बढ़ती देखकर और पहरेदारको भी चोर देखकर मेरा हृदय दहल गया है। हे कृपानिधान ! यद्यपि आप सदा ही सावधान हैं तथापि तुलसी बलिहारी जाता है, आप इसकी बार-बार सँभाल करते रहियेगा (ताकि इसके मनमें विकार न आने पावे) ॥ ८० ॥

दिन-दिन दूनो देखि दारिदु, दुकालु, दुखु,
दुरितु, दुराजु सुख-सुकृत सकोच है।
मागें पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड,
कालकी करालता, भलेको होत पोच है॥
आपनें तौ एकु अवलंबु अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट बिमोच है।

तुलसीकी साहसी सराहिए कृपाल राम!
नामकें भरोसें परिनामको निसोच है॥

दिनोंदिन दरिद्रता, दुष्काल (दुर्भिक्ष), दुःख, पाप और कुराज्यको दूना होता देखकर सुख और सुकृत संकुचित हो रहे हैं। समय ऐसा भयंकर आ गया है कि बड़े-बड़े पापी तो डाँट-डपटकर माँगनेसे अपना दाँव पा लेते हैं और भले आदमीका बुरा हो जाता है। जैसे बालकको एकमात्र माँका ही सहारा होता है, वैसे ही अपने तो एकमात्र सहारा सर्वसंकटोंसे छुड़ानेवाले और समर्थ श्रीसीतानाथका ही है। हे कृपालु रामजी ! तुलसीके साहसकी सराहना कीजिये कि वह (आपके) नामके भरोसे परिणामकी ओरसे निश्चिन्त हो गया है॥ ८१॥

मोह-मद मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारिसों,
बिसारि बेद-लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत, मुहँ आवै सो कहत, कछु
काहूकी सहत नाहिं, सरकस हेतु है॥
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिलतें,
ताहूमें सहाय कलि कपटनिकेतु है।
जैबेको अनेक टेक, एक टेक ह्वैबेकी, जो
पेट-प्रियपूत हित रामनामु लेतु है॥

यह मोहरूपी मदसे उन्मत्त हो गया है, कुमतिरूपी कुलटा स्त्रीमें रत है, लोक और वेदकी लज्जाको त्यागकर बड़ा अचेत (बेपरवाह) हो गया है। मनमानी करता है और मुँहमें जो आता है, वही [बिना बिचारे] कह डालता है और उद्दण्डताके कारण किसीकी कोई बात सहता नहीं। गोसाईंजी कहते हैं कि इस प्रकार मुझमें अजामिलसे भी अधिक अधमता है, तिसपर भी कपटनिधान कलि मेरा सहायक है। बिगड़नेके तो अनेक मार्ग हैं; परंतु बननेका केवल एक रास्ता है, वह यह है कि यह पेटरूपी पुत्रके लिये रामनाम लेता है [भाव यह है कि अधम अजामिलने पुत्रके मिससे भगवान्‌का नाम लिया था। मैंने भी पेटरूपी पुत्रके लिये उसीका आश्रय लिया है]॥ ८२॥

कलिवर्णन

जागिए न सोइए, बिगोइए जनमु जायँ,
दुख, रोग रोइए, कलेसु कोह-कामको।

राजा-रंक, रागी औ बिरागी, भूरिभागी, ये
अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बामको॥
तुलसी! कबंध-कैसो धाइबो, बिचारु अंध!
धंध देखिअत जग, सोचु परिनामको।
सोइबो जो रामके सनेहकी समाधि-सुखु,
जागिबो जो जीह जपै नीकें रामनामको॥

(इस संसारमें) न तो हम जागते हैं, न सोते हैं? जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। दुःख और रोगके कारण रोते हैं और काम-क्रोधका क्लेश (मानसिक व्यथा) सहते हैं। राजा-रंक, रागी-विरागी और महाभाग्यवान् तथा अभागी, सभी जीव जल रहे हैं; कुटिल कलियुगका ऐसा ही प्रभाव है। गोसाईंजी अपने लिये कहते हैं कि अरे अंधे! विचार कर, इस जगत्में जितने धंधे दिखायी देते हैं, वे सब कबन्ध (बिना सिरवाले रुण्ड) की दौड़के समान हैं, जिनका अन्त चिन्ता ही है। श्रीरामप्रेमकी समाधिका जो सुख है, वही सोना है और जिह्वा भलीभाँति रामनाम जपे—यही जागना है॥ ८३॥

बरन-धरमु गयो, आश्रम निवासु तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो-सो है।
करमु उपासना कुबासनाँ बिनास्यो ग्यानु,
बचन-बिराग, बेष जगतु हरो-सो है॥
गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,
निगम-नियोगतें सो केलि ही छरो-सो है।
कायँ-मन-बचन सुभायँ तुलसी है जाहि
रामनामको भरोसो, ताहिको भरोसो है॥

इस कुसमयमें वर्णधर्म चला गया, ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंने अपना स्थान छोड़ दिया। (अधर्मके) त्राससे चकित होकर भग्गी-सी पड़ी हुई है। कर्म, उपासना और ज्ञानको कुवासना (विषयभोगकी प्रबल इच्छा) ने नष्ट कर दिया है। वचनमात्रके वैराग्य और वेषने जगत्को ठग-सा लिया है! गोरखने योग क्या जगाया, लोगोंको भक्तिसे विमुख कर दिया और वेदकी आज्ञाने खेलहीमें संसारको ठग-सा लिया है। गोसाईंजी कहते हैं कि जिसे शरीर, मन और वचनसे स्वाभाविक ही रामनामका भरोसा है, उसीके सम्बन्धमें भरोसा होता है (कि वह संसारसे तर जायगा)॥ ८४॥

बेद-पुरान बिहाइ सुपंथु, कुमारग, कोटि कुचालि चली है।
कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु, बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आश्रमधर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथको परमारथको कलि रामको नामप्रतापु बली है॥

वेद-पुराणरूप सुमार्गको त्यागकर तरह-तरहकी कुचालें और करोड़ों कुमार्ग चल गये हैं। समय बड़ा कठिन है, राजा दयारहित हैं, राजसमाज (मन्त्री, कर्मचारी) बड़ा ही छली है। वर्णविभाग नहीं रहा, न आश्रमधर्म ही रहा है और संसारको दुःख, दोष और दरिद्रताने दलित कर दिया है। (ऐसे घोर) कलिकालमें स्वार्थ और परमार्थके लिये राम-नामका प्रताप ही बलवान् है॥ ८५॥

न मिटै भवसंकटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिरागु, न ग्यानु कहूँ, सबु लागत फोकट झूठ-जटो॥
नटु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ, रसनाँ निसिबासर रामु रटो॥

इस संसारका संकट मिट नहीं सकता, क्योंकि तप तो कठिन है; और तीर्थोंमें अनेक जन्मोंतक विचरते रहो, किंतु कलियुगमें न कहीं वैराग्य है, न ज्ञान है, सब सारहीन और असत्यपूरित प्रतीत होता है। नटकी भाँति अपने पेटरूपी कुत्सित पेटारेसे करोड़ों इन्द्रजालके कौतुकका ठाट मत ठटो। गोसाईंजी कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वासे रात-दिन रामनाम रटते रहो॥ ८६॥

दमु दुर्गम, दान, दया, मख, कर्म, सुधर्म अधीन सबै धनको।
तप, तीरथ, साधन, जोग, बिरागसों होइ, नहीं दृढ़ता तनको॥
कलिकाल करालमें 'राम कृपालु' यहै अवलंबु बड़ो मनको।
'तुलसी' सब संजमहीन सबै, एक नाम-अधारु सदा जनको॥

दम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह कठिन है। दान, दया, यज्ञ, कर्म और उत्तम धर्म सब धनके अधीन हैं। तप, तीर्थ और योगसाधन वैराग्यसे होते हैं, किंतु (मनकी) दृढ़ता तनिक भी नहीं है। इस कराल कलिकालमें 'राम कृपालु हैं'—यही मनके लिये बड़ा अवलम्ब है। गोसाईंजी कहते हैं कि सब लोग सब प्रकारके संयमोंसे रहित हैं, भक्तोंको सदैव एक राम-नामका ही आधार है॥ ८७॥

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रूकी॥

अब जोर जरा जरि गातु गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीकें कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दूकी॥

(मनुष्यकी) सुन्दर देह पाकर भी मोहरूपी नदीको पार करनेके लिये (भक्तिरूपी) नौका प्राप्त नहीं की और न कोई उत्तम करनी की। श्रीरामकथाको भलीभाँति नहीं गाया और न प्रह्लाद तथा ध्रुव (जैसे भक्तों) की कथा सुनी। अब भरपूर वृद्धावस्थाके कारण शरीर जर्जर हो गया है, तथापि मनने ग्लानि मानकर अपनी कुटेव नहीं छोड़ी, इससे तुलसीने अच्छी तरह विचारकर यह निश्चय कर लिया है कि 'राम' इन दो अक्षरोंका ही हृदयमें बड़ा अवलम्ब है॥ ८८॥

राम-नाम-महिमा

रामु बिहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कबिकोकिलहू की।
नामहि तें गजकी, गनिकाकी, अजामिलकी चलि गै चलचूकी॥
नामप्रताप बड़ें कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधूकी।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दूकी॥

सीधा रामनाम त्यागकर उलटा 'मरा', 'मरा' जपनेसे कवि-कोकिल (श्रीवाल्मीकिजी) की बिगड़ी सुधर गयी। रामनामसे ही गजकी और गणिकाकी बन गयी और अजामिलका धोखा भी चल गया। रामनामहीके प्रतापसे बड़े कुसमाजमें अर्थात् दुर्योधनकी सभामें द्रौपदीकी लाज डंकेकी चोट रह गयी। गोसाईंजी कहते हैं कि जिसको 'राम' इन दोनों अक्षरोंमें प्रीति और प्रतीति है, उसका अब भी भला ही है॥ ८९॥

नामु अजामिल-से खल तारन, तारन बारन-बारबधूको।
नाम हरे प्रहलाद-बिषाद, पिता-भय-साँसति-सागरु सूको॥
नामसों प्रीति-प्रतीति-बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल, न चूको।
राखिहैं रामु सो जासु हिएँ तुलसी हुलसै बलु आखर दूको॥

रामनाम अजामिल-जैसे खलोंको भी तारनेवाला है, गज और वेश्याका भी निस्तार करनेवाला है। नामहीने प्रह्लादके विषादका नाश किया और उनके पिता (हिरण्यकशिपु) से होनेवाले भय और साँसतरूपी समुद्रको सुखा दिया। रामनाममें जिसकी प्रीति और प्रतीति नहीं है, उसको कराल कलिकाल निगल जानेमें कभी नहीं चूका अर्थात् निगल ही गया। गोस्वामीजी कहते हैं कि जिसके

हृदयमें 'रा' और 'म'—इन दो अक्षरोंका बल हुलसता है, उसकी रक्षा श्रीरामजी करेंगे॥ ९०॥

जीव जहानमें जायो जहाँ, सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोसु न काहू, कियो अपनो, सपनेहूँ नहीं सुखलेसु लहो है॥
रामके नामतें होउ सो होउ, न सोउ हिएँ, रसना हीं कहो है।
कियो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोइ रहो है॥

तुलसीदासजी कहते हैं—संसारमें जीव जहाँ भी उत्पन्न होता है, वहीं तीनों तापोंसे जलता रहता है। (इसमें) किसीका दोष नहीं है, (सब) अपने ही कियेका फल है, इसीसे उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र सुख नहीं मिलता। रामनामके प्रभावसे जो कुछ होना हो सो (भले ही) हो, किंतु उस नामको भी मैं हृदयसे नहीं लेता, केवल जिह्वासे ही कहता हूँ। इसके अतिरिक्त मैंने (आजतक) न तो कुछ किया है, न कुछ करना है और न कुछ कहना ही है। अब तो केवल मरना ही बाकी है॥ ९१॥

जीजे न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालयहू को न संबलु मेरें।
नामु रटो, जमबास क्यों जाउँ, को आइ सकै जमकिंकरु नेरें॥
तुम्हरो सब भाँति तुम्हारिअ सौं, तुम्ह ही बलि हौ मोको ठाहरु हेरें।
बैरख बाँह बसाइए पै तुलसी-घरु ब्याध-अजामिल-खेरें॥

मेरे पास जीवित रहनेके लिये भी कोई ठिकाना नहीं है। न तो कोई अपना गाँव है और न देवलोकमें जानेका ही कोई सामान है। मैंने रामनाम रटा है, इसलिये यमलोक भी कैसे जा सकता हूँ—(ऐसी दशामें) कौन यमदूत मेरे समीप आ सकता है। आपकी कसम, अब तो सब प्रकारसे मैं आपका ही हूँ और बलिहारी जाऊँ, आपहीका मैंने आश्रय ढूँढ़ा है। अतः अब आप अपनी भुजारूप पताकाके नीचे व्याध और अजामिलके खेड़ेमें ही तुलसीदासका भी घर बसा दीजिये॥ ९२॥

का कियो जोगु अजामिलजू, गनिकाँ कबहीं मति पेम पगाई।
ब्याधको साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाई॥
करुनाकरकी करुना करुना हित, नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहेको खीझिअ, रीझिअ पै, तुलसीहु सों है, बलि सोइ सगाई॥

अजामिलने कौन-सा योग साधा था और (पिङ्गला) वेश्याने अपनी

बुद्धिको कब प्रभुके प्रेममें पागा था। भला, आप व्याधकी ही साधुता बतलाइये, वह तो अगाध अपराधोंमें ही दिखायी देती थी। करुणानिधान (श्रीराम) की जो करुणा है वह तो करुणा करनेके ही लिये है [अर्थात् वह तो अकारण ही सबपर रहती है, उसे प्राप्त करनेके लिये किसी गुणकी आवश्यकता नहीं है] जो नामका सुन्दर निमित्त लेकर आपको धोखा देता है, हे रघुनाथजी! आप उससे रूठते क्यों हैं, कृपया प्रसन्न होइये। तुलसीदासके साथ भी आपका वही सम्बन्ध है, वह आपपर बलिहारी जाता है॥ ९३॥

जे मद-मार-बिकार भरे, ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमानु तऊ मनमें, जनु भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं?॥
जौं कछु बात बनाइ कहौं, तुलसी तुम्ह में, तुम्हहूँ उर माहीं।
जानकीजीवन! जानत हौ, हम हैं तुम्हरे, तुम्ह में, सकु नाहीं॥

जो पुरुष अभिमान और कामविकारसे भरे हैं, वे आचार-विचारके पास भी नहीं फटकते। [यह तुलसीदास भी ऐसा ही है] तथापि इसके मनमें यह अभिमान है कि यह आपके सिवा किसी और दीन [देवता या मनुष्य] से याचना नहीं करेगा। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि मैं कोई बात बनाकर कहता होऊँ तो मैं आपके अंदर हूँ और आप भी मेरे हृदयमें विराजमान हैं [इसलिये आपसे कोई दुराव नहीं हो सकता]। हे जानकीजीवन ! आप यह जानते हैं कि हम आपके हैं और आपहीके अंदर रहते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं॥ ९४॥

दानव-देव, अहीस-महीस, महामुनि-तापस, सिद्ध-समाजी।
जग-जाचक, दानि दुतीय नहीं, तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी॥
एते बड़े तुलसीस! तऊ सबरीके दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी॥

दानव-देवता, शेषादि सर्पोंके राजा तथा पृथ्वीके राजा, महर्षि, तपस्वी और सिद्धगण—ये सब संसारमें माँगनेवाले ही हैं। आपके सिवा संसारमें कोई दूसरा दानी नहीं है; आप ही सबकी सारी बातें बनाते हैं। हे तुलसीश्वर ! आप इतने बड़े हैं, तो भी शबरीके दिये हुए (जूठे बेर) बिना आपकी भूख नहीं भागी। हे दीनोंके प्रतिपालक राम! आप दीनोंकी रक्षा करके ही गरीबनिवाज हुए हैं (अतः मेरी भी रक्षा कीजिये)॥ ९५॥

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।

पेटको पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी॥
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी॥

श्रमजीवी, किसान, व्यापारी, भिखारी, भाट, सेवक, चञ्चल नट, चोर, दूत और बाजीगर—सब पेटहीके लिये पढ़ते, अनेक उपाय रचते, पर्वतोंपर चढ़ते और मृगयाकी खोजमें दुर्गम वनोंमें विचरते हैं। सब लोग पेटहीके लिये ऊँचे-नीचे कर्म तथा धर्म-अधर्म करते हैं, यहाँतक कि अपने बेटा-बेटीतकको बेच देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—यह पेटकी आग बड़वाग्निसे भी बड़ी है; यह तो केवल एक भगवान् रामरूप श्याममेघके द्वारा ही बुझायी जा सकती है॥ ९६॥

खेती न किसानको, भिखारीको न भीख, बलि,
बनिकको बनिज, न चाकरको चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?'
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत,
साँकरे सबै पै, राम! रावरें कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥

(तुलसीदासजी कहते हैं—) हे राम ! मैं आपकी बलि जाता हूँ, (वर्तमान समयमें) किसानोंकी खेती नहीं होती, भिखारीको भीख नहीं मिलती, बनियोंका व्यापार नहीं चलता और नौकरी करनेवालोंको नौकरी नहीं मिलती। (इस प्रकार) जीविकासे हीन होनेके कारण सब लोग दुःखी और शोकके वश होकर एक-दूसरेसे कहते हैं कि 'कहाँ जायँ और क्या करें (कुछ सूझ नहीं पड़ता)' वेद और पुराण भी कहते हैं तथा लोकमें भी देखा जाता है कि संकटमें तो आपहीने सबपर कृपा की है। हे दीनबन्धु ! दारिद्र्यरूपी रावणने दुनियाको दबा लिया है और पापरूपी ज्वालाको देखकर तुलसीदास हा-हा करता है [अर्थात् अत्यन्त कातर होकर आपसे सहायताके लिये प्रार्थना करता है]॥ ९७॥

कुल-करतूति-भूति-कीरति-सुरूप-गुन-
जौबन जरत जुर, परै न कल कहीं।
राजकाजु कुपथु, कुसाज भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं॥
गति तुलसीसकी लखै न कोउ, जो करत
पब्बयतें छार, छारै पब्बय पलक हीं।
कासों कीजै रोषु, दोषु दीजै काहि, पाहि राम!
कियो कलिकाल कुलि खललु खलक हीं॥

सब लोग कुल, करनी, ऐश्वर्य, यश, सुन्दर रूप, गुण और यौवनके ज्वरमें जल रहे हैं (अर्थात् नष्ट हो रहे हैं); कहीं भी कल नहीं मिलता। इस रोगके लिये राजकार्य कुपथ्य है और नाना प्रकारके भोग इस रोगको बढ़ानेवाली दूषित सामग्री है और वेदके जाननेवाले विद्या पाकर विवश हो प्रलाप करने लगते हैं। तात्पर्य यह कि कुल इत्यादिके अभिमानसे तो जलते ही थे, अब राजकार्यरूपी कुपथ्य और भोगरूपी कुसमाज तथा वेद, बुद्धि और विद्या पाकर उन्मत्त हो गये हैं, अतएव कुछ सूझता नहीं। [इसी कारण] तुलसीदासके स्वामी (श्रीरामचन्द्र) की गतिको कोई नहीं जानता, जो पलमात्रमें पर्वतको खाक और खाकको पर्वत कर देते हैं। (ऐसी स्थिति देखकर) किसपर क्रोध किया जाय और किसको दोष दिया जाय। कलिकालने सारे संसारमें उपद्रव मचा दिया है; हे राम! रक्षा कीजिये॥ ९८॥

बबुर-बहेरेको बनाइ बागु लाइयत,
रूँधिबेको सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचिहू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है॥
आपु महापातकी, हँसत हरि-हरहू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलिको कलुष मन मलिन किए महत,
मसककी पाँसुरीं पयोधि पाटियतु है॥

(कलिके वशीभूत होकर लोग ऐसे हो गये हैं कि) बबूर और बहेड़ेका बाग लगाकर उसकी बाड़ बनानेके लिये कल्पवृक्षको काटकर लाते हैं और ऐसे नीच

हो गये हैं कि हरिश्चन्द्र और दधीचिको भी गाली देते हैं [जिन्होंने परोपकारार्थ शरीरतक दान कर दिया था] और अपने चने चबाकर भी हाथ चाटते हैं [कि कहीं कुछ लगा तो नहीं है, अर्थात् परम दरिद्री हैं]। अपने तो महापातकी हैं, परंतु विष्णुभगवान् और शिवजीतकको हँसते हैं; स्वयं भाग्यहीन हैं; परंतु बड़े-बड़े भाग्यवानोंको डाँट देते हैं; कलिके पापोंने सबके मनोंको अत्यन्त मलिन कर दिया है, परंतु [ऐसी अवस्थामें भी ये लोक-परलोक सुधारना चाहते हैं] मानो मच्छरकी पसलियोंसे (अपार) समुद्रको पाटना चाहते हैं॥ ९९॥

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल! तुम्ह,
जाहि घालो चाहिए, कहौ धौं, राखै ताहि को।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो-ढारो रावरो न,
मैंहू तैंहू ताहिको, सकल जगु जाहिको॥
कामु, कोहु लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि,
एते मान अकसु कीबेको आपु आहि को।
साहेबु सुजान, जिन्ह स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नामु, हौं गुलामु रामसाहिको॥

हे कराल कलिकाल महाराज! सुनो, जिसको तुम नष्ट करना चाहो, उसकी रक्षा भला कौन कर सकता है। मैं तो दीन-दुर्बल हूँ और आपका कुछ भी बिगाड़ा-गिराया नहीं। मैं भी और तुम भी उसी (ईश्वर) के हैं, जिसका यह सारा संसार है। तुम जो काम-क्रोधको मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखलाते हो सो तुम इतना विरोध करनेवाले कौन हो? मेरे स्वामी (श्रीरामचन्द्रजी) बड़े विज्ञ हैं अर्थात् वे सब जानते हैं; उन्होंने श्वानका भी पक्ष किया था*। मैं तो रामशाहका

* एक दिन श्रीरामजीके राजदरबारमें एक कुत्ता आया और निवेदन किया—'महाराज! सर्वार्थसिद्ध नामक भिक्षुक ब्राह्मणने बिना ही अपराध लाठीसे मेरा सिर फोड़ दिया, आप मेरा न्याय कर दीजिये।' भगवान्ने ब्राह्मणको बुलाया और उससे पूछा कि 'तुमने निरपराध कुत्तेके सिरमें क्यों लाठी मारी?' ब्राह्मणने कहा कि 'मैं भीख माँगता फिरता था, इसे मैंने रास्तेसे हटाया; जब यह न हटा, तब मैंने लकड़ी मार दी।' ब्राह्मणको अदण्डनीय समझकर भगवान् विचार करने लगे। इतनेमें कुत्तेने कहा कि 'भगवन्! आप इसे कालंजरका महंत बना दीजिये। मैं भी पूर्वजन्ममें वहींका महंत था। पूर्ण न्यायोचित व्यवहार करनेपर भी मुझे कुत्ता होना पड़ा, फिर इस क्रोधीका क्या कहना?' इसपर भगवान् श्रीरामने उसे कालंजरका महंत बना दिया।

गुलाम हूँ और रामबोला मेरा नाम है। [फिर वे मेरा पक्ष क्यों न करेंगे?] ॥ १०० ॥

साँची कहौ, कलिकाल कराल! मैं ढारो-बिगारो तिहारो कहा है।
कामको, कोहको, लोभको, मोहको मोहिसों आनि प्रपंचु रहा है॥
हौ जगनायकु लायक आजु, पै मेरिऔ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना 'तुलसी' जग दूसरेसों करिहौं न हहा है॥

हे कराल कलिकाल! सच कहो, मैंने तुम्हारा क्या ढाला या बिगाड़ा है? क्या यह काम, क्रोध, लोभ और मोहका जाल रच मुझहीपर फैलाना था? तुम आज जगत्के स्वामी और बड़े सामर्थ्यवान् हो। परंतु हे देव! मेरी भी यह बहुत बुरी आदत है कि जानकीनाथ (श्रीराम) के बिना किसी दूसरेके सामने हाहा नहीं खाता, यानी अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना नहीं करता॥ १०१ ॥

भागीरथी-जलु पान करौं, अरु नाम द्वै रामके लेत नितै हौं।
मोको न लेनो, न देनो कछू, कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहौं॥
जानि कै जोरु करौ, परिनाम तुम्है पछितैहौ, पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्यों हीं तिहारें हिएँ न हितैहौं॥

मैं गङ्गाजल पीता हूँ और नित्य रामके दो नाम लेता हूँ। हे कलिकाल! मुझे तुमसे कुछ भी लेना-देना (सरोकार) नहीं है और मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर नहीं देखूँगा। यदि तुम जान-बूझकर मेरे साथ जोर (अत्याचार) करोगे तो परिणाममें तुम्हीं पछताओगे। मैं नहीं डरूँगा। जिस तरह गरुड़ने ब्राह्मणको नहीं पचनेके कारण उगल दिया, वैसे मैं भी तुम्हारे पेटमें नहीं पचूँगा* ॥ १०२ ॥

राजमरालके बालक पेलि कै पालत-लालत खूसरको।
सुचि सुंदर सालि सकेलि, सो बारि कै, बीजु बटोरत ऊसरको॥
गुन-ग्यान-गुमानु, भँभेरि बड़ी, कलपद्रुमु काटत मूसरको।
कलिकाल बिचारु अचारु हरो, नहि सूझै कछू धमधूसरको॥

लोग राजहंसके बच्चेको ठेलकर उल्लूके बच्चेका लालन-पालन करते हैं; सुन्दर और पवित्र धानको बटोर और जलाकर ऊसर भूमिके लिये बीज

---

* गरुड़जी एक समय धोखेसे एक ब्राह्मणको निगल गये। इससे उनके पेटमें जलन पैदा हुई। अन्तमें उन्हें उसे अपने पेटमेंसे निकाल देना पड़ा।

बटोरते हैं। गुण और ज्ञानका बड़ा अभिमान और सतर्कता है; (इसीलिये) मूसर बनानेके लिये कल्पवृक्षको काटते हैं। कलिकालने विचार और आचारको हर लिया है; इसीसे बुद्धिहीनोंको कुछ नहीं सूझता॥ १०३॥

कीबे कहा, पढ़िबेको कहा फलु, बूझि न बेदको भेदु बिचारैं।
स्वारथको, परमारथको कलि कामद रामको नामु बिसारैं॥
बाद-बिबाद बिषादु बढ़ाइ कै, छाती पराई औ आपनी जारैं।
चारिहुको, छहुको, नवको, दस-आठको पाठु कुकाठु ज्यों फारैं॥

क्या कर्तव्य है और पढ़नेका क्या फल है—यह समझकर वेदके भेदको नहीं विचारते [वेदका सार तत्त्व और] कलियुगमें स्वार्थ एवं परमार्थके एकमात्र कल्पवृक्ष रामनामको बिसार दिया; (ज्ञानाभिमानवश व्यर्थके) वाद-विवादसे विषादको बढ़ाकर अपनी और दूसरोंकी छाती जलाते हैं और चारों वेद, छहों शास्त्र, नवों व्याकरण* और अठारहों पुराणोंको पढ़कर कुकाठको चीरनेके समान व्यर्थ गवाँ देते हैं। [भाव यह है कि उनका इन सब शास्त्रोंको पढ़ना वैसा ही निष्फल होता है जैसा कुकाठको चीरना।]॥ १०४॥

आगम, बेद, पुरान बखानत मारग कोटिन, जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईसु कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग, बिरागु लै जीव पराने।
को करि सोचु मरै 'तुलसी', हम जानकीनाथके हाथ बिकाने॥

वेद, शास्त्र और पुराण करोड़ों मार्गोंका वर्णन करते हैं, परंतु वे समझमें नहीं आते और जो मुनिलोग हैं, वे अपने-आपको ही ईश्वर, सिद्ध और चतुर कहलवाते हैं। जितने धर्म थे, उन सबको कलियुग लील गया है तथा जप, योग और वैराग्यादि अपनी-अपनी जान लेकर भाग गये हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि इनका सोच करके कौन मरे। हम तो जानकीनाथ श्रीरामचन्द्रके हाथ बिक गये हैं॥ १०५॥

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटीसों, बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ॥

---

* नौ व्याकरण निम्नलिखित आचार्योंके चलाये हुए और उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं—इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, आपिशलि, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र और सरस्वती।

तुलसी सरनाम गुलामु है रामको, जाको, रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीतको सोइबो, लैबोको एकु न दैबेको दोऊ॥

चाहे कोई धूर्त कहे अथवा परमहंस कहे; राजपूत कहे या जुलाहा कहे, मुझे किसीकी बेटीसे तो बेटेका ब्याह करना नहीं है, न मैं किसीसे सम्पर्क रखकर उसकी जाति ही बिगाड़ूँगा। तुलसीदास तो श्रीरामचन्द्रका प्रसिद्ध गुलाम है, जिसको जो रुचे सो कहो। मुझको तो माँगके खाना और मसजिद (देवालय) में सोना है; न किसीसे एक लेना है, न दो देना है॥ १०६॥

मेरें जाति-पाँति न चहौं काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको।
लोकु परलोकु रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीकें एक नामको॥
अति ही अयाने उपखानो नहि बूझैं लोग,
'साह ही को गोतु गोतु होत है गुलामको॥
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोचु कहा,
का काहूके द्वार परौं, जो हौं सो हौं रामको॥

मेरी कोई जाति-पाँति नहीं है और न मैं किसीकी जाति-पाँति चाहता हूँ। कोई मेरे कामका नहीं है और न मैं किसीके कामका हूँ। मेरा लोक-परलोक सब श्रीरामचन्द्रके हाथ है। तुलसीको तो एकमात्र रामनामका ही बहुत बड़ा भरोसा है। लोग अत्यन्त गँवार हैं—कहावत भी नहीं समझते कि जो गोत्र स्वामीका होता है, वही सेवकका होता है। साधु हूँ अथवा असाधु, भला हूँ अथवा बुरा, इसकी मुझे कोई परवा नहीं है। मैं जैसा कुछ भी हूँ श्रीरामचन्द्रका हूँ। क्या मैं किसीके दरवाजेपर पड़ा हूँ?॥ १०७॥

कोऊ कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै, रामको गुलामु खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है॥
चहत न काहूसों न कहत काहूकी कछू,
सबकी सहत, उर अंतर न ऊब है।

तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथही के
रामकी भगति-भूमि मेरी मति दूब है॥

कोई कहता है कि (यह तुलसी) कुसाज अर्थात् छल-कपट आदि करता है, कोई कहता है कि यह बड़ा दगाबाज है और कोई कहता है कि यह श्रीरामचन्द्रका खूब सच्चा सेवक है। साधु मुझे परम साधु जानते हैं और दुष्ट महादुष्ट समझते हैं। झूठी-सच्ची करोड़ों प्रकारकी बातोंकी लहरें उठा करती हैं। मैं तो किसीसे कुछ चाहता नहीं, न किसीके विषयमें कुछ कहता हूँ; सबकी सहता हूँ, चित्तमें कोई घबराहट नहीं है। तुलसीका बुरा-भला तो रघुनाथजीके ही हाथ है; मेरी बुद्धि रामभक्तिरूप भूमिमें दूबके समान है अर्थात् मेरी बुद्धिका परम आश्रय रामभक्ति ही है॥ १०८॥

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, कामके।
जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बामके॥
जागैं बुध बिद्या हित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि, धन, धामके।
जागैं भोगी भोग हीं, बियोगी, रोगी सोगबस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक रामके॥

'योगी, जंगम (परिव्राजक अथवा लिंगायत साधु), संन्यासी और मण्डली बनाकर रहनेवाले साधु इसलिये जागते हैं कि (एक ओर तो वे परमेश्वरका) ध्यान करते हैं और (दूसरी ओर) उनके मनमें काम, क्रोध, मोह, लोभका बड़ा भारी डर बना रहता है। राजालोग राजकाज, सेवा-मण्डल तथा अनेकों प्रकारकी सामग्रीके पीछे जागते रहते हैं और बड़े-बड़े प्रतिकूल शत्रुओंके समाचारको सुनकर शोचग्रस्त रहते हैं। बुद्धिमान् पण्डितलोग विद्याके लिये, लोभी पुरुष पृथ्वी, धन और घरके लोभमें जागते हैं, भोगीलोग भोगके लिये और वियोगी तथा रोगीलोग [विरह एवं रोगके] संतापके कारण जागते हैं, किंतु तुलसीदास तो एक रामजीके भरोसे सुखपूर्वक सोता है॥ १०९॥

रामु मातु, पितु, बंधु, सुजनु, गुरु, पूज्य, परमहित।
साहेबु, सखा, सहाय, नेह-नाते, पुनीत चित॥
देसु, कोसु, कुलु, कर्म, धर्म, धनु, धामु, धरनि, गति।
जाति-पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति॥
परमारथु, स्वारथु, सुजसु, सुलभ राम तें सकल फल।
कह तुलसिदासु, अब, जब-कबहुँ एक राम तें मोर भल॥

हमारे माता-पिता, बन्धु, आत्मीय, गुरु, पूज्य और परम हितकारी राम ही हैं। राम ही हमारे स्वामी, सखा और सहायक हैं तथा पवित्र चित्तसे जितने प्रेमके सम्बन्ध हैं, सब राम ही हैं। हमारे देश, कोश, कुल, धर्म-कर्म, धन, धाम और गति भी राम ही हैं। हमारे जाति-पाँति भी राम ही हैं और हमारी प्रतिष्ठा भी सब प्रकार श्रीरामहीके पीछे है। परमार्थ, स्वार्थ, सुयश, सब प्रकारके फल हमें रामहीसे सुलभ हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि अभी या जब कभी हो, मेरा भला तो एक रामहीसे होगा॥ ११०॥

रामगुणगान

महाराज, बलि जाउँ, राम! सेवक-सुखदायक।
महाराज, बलि जाउँ, राम! सुन्दर, सब लायक॥
महाराज, बलि जाउँ, राम! सब संकट-मोचन।
महाराज, बलि जाउँ, राम! राजीवबिलोचन॥
बलि जाउँ, राम! करुनायतन, प्रनतपाल, पातकहरन।
बलि जाउँ, राम! कलि-भय-बिकल तुलसिदासु राखिअ सरन॥

हे महाराज! हे सेवकसुखदायक राम! मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे महाराज! हे सुन्दर और सर्वसमर्थ राम! मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे महाराज! हे राम! आप सब संकटोंसे छुड़ानेवाले हैं। मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे कमलनयन महाराज राम! मैं आपपर बलिहारी हूँ। आप करुणाके धाम, शरणागतरक्षक और पापोंको दूर करनेवाले हैं। हे राम! मैं आपकी बलि जाता हूँ, कलिकालके भयसे व्याकुल तुलसीदासको आप अपनी शरणमें रखिये॥ १११॥

जय ताड़का-सुबाहु-मथन मारीच-मानहर!
मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन, करुनाकर!

नृपगन-बल-मद सहित संभु-कोदंड-बिहंडन!
जय कुठारधरदर्पदलन दिनकरकुलमंडन॥
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर, सुषमाभवन।
कह तुलसिदासु, सुरमुकुटमनि, जय जय जय जानकिरवन॥

ताड़का और सुबाहुका नाश करनेवाले, मारीचके मदको तोड़नेवाले, विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी रक्षामें दक्ष, शिलारूप अहल्याको तारनेवाले, करुणाकी खानि, राजाओंके मदसहित शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले! आपकी जय हो। कुठारधर परशुरामके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, सूर्यकुलभूषण भगवान् राम! आपकी जय हो। जनकपुरीको आनन्द देनेवाले, परम सुखसागर, शोभाधाम श्रीरामचन्द्रजी! आपकी जय हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि देवताओंके मुकुटमणि जानकीरमण श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो! जय हो!! जय हो !!!॥ ११२॥

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजनरंजन!
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भय-भंजन!
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंसबिभूषन!
सुभट चतुर्दस-सहस दलन त्रिसिरा-खर-दूषन॥
जय दंडकबन-पावन-करन, तुलसिदास-संसय-समन!
जगबिदित-जगतमनि, जयति जय जय जय जय जानकिरमन!

जयन्तको जीतनेवाले अन्तरहित और साधुजनोंको आनन्द देनेवाले रामजी! आपकी जय हो। विराधके वधमें कुशल तथा देवता और मुनिगणोंका भय दूर करनेवाले प्रभु राम! आपकी जय हो। राक्षसी (शूर्पणखा) को रूपरहित करनेवाले, रघुकुलके भूषण! आपकी जय हो। चौदह सहस्र वीरों और खर-दूषण, त्रिशिराका नाश करनेवाले! आपकी जय हो। दण्डकवनको पवित्र करनेवाले तथा तुलसीदासके संशयका नाश करनेवाले! आपकी जय हो। संसारमें प्रख्यात तथा जगत्के प्रकाशक जानकीरमण भगवान् राम! आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!!! ॥ ११३॥

जय मायामृगमथन, गीध-सबरी-उद्धारन!
जय कबंधसूदन बिसाल तरु ताल बिदारन!
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संतहित!

कपि कराल भट भालु कटक पालन, कृपालचित!
जय सिय-बियोग-दुख हेतु कृत-सेतुबंध बारिधिदमन!
दससीस बिभीषन अभयप्रद, जय जय जय जानकिरमन!

मायामृगरूप मारीचको मारनेवाले तथा जटायु और शबरीका उद्धार करनेवाले भगवान् राम! आपकी जय हो। कबन्धको मारनेवाले और बड़े-बड़े ताड़के वृक्षोंको विदीर्ण करनेवाले प्रभु राम ! आपकी जय हो। बलसम्पन्न वालिका नाश करनेवाले, सुग्रीवको राज्य देनेवाले तथा संतोंका हित करनेवाले ! आपकी जय हो। भयानक भालु और वानर वीरोंके कटकका पालन करनेवाले दयार्द्रचित्त रघुनाथजी ! आपकी जय हो। जानकीजीके वियोगजनित दुःखके कारण समुद्रका दमन करके उसपर सेतु बाँधनेवाले रामजी! आपकी जय हो तथा रावणसे विभीषणको अभय देनेवाले हे जानकीरमण! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो!!! ॥ ११४॥

रामप्रेमकी प्रधानता

कनककुधरु केदारु, बीजु सुंदर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर॥
तीरथपति अंकुरसरूप जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा-सुपत्र, मंजरिय लच्छि जेहि॥
कैवल्य सकल फल, कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख-बरिस।
कह तुलसिदास, रघुबंसमनि, तौ कि होइ तुअ कर सरिस॥

सुमेरु पर्वत थाल्हा हो, सुन्दर चिन्तामणि बीज हो, कामधेनुके अमृतमय अत्यन्त शुद्ध दुग्धसे उसे सींचा जाय, उससे तीर्थराज प्रयाग अंकुररूपसे प्रकट हो, उसकी रक्षा स्वयं कुबेरजी करें, उसकी मरकतमणिमय शाखा और पत्ते हों और मञ्जरी साक्षात् लक्ष्मीजी हों तथा सब प्रकारकी मुक्तियाँ ही जिसके फल हों, ऐसा यह कल्पतरु स्वभावसे ही सब प्रकारके मङ्गल और सुखोंकी वर्षा करता हो, तो भी तुलसीदासजी कहते हैं—हे रघुवंशमणि ! वह कल्पवृक्ष क्या कभी आपके हाथोंके बराबर हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता॥ ११५॥

जाय सो सुभटु समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै॥

जाय धनिकु बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित।
सब जाय दासु तुलसी कहै, जौं न रामपद नेहु नित॥

वह समर्थ वीर व्यर्थ है जो संग्राम (का अवसर) पाकर भी युद्ध नहीं करता। जो यति (संन्यासी अथवा विरक्त) कहलाकर विषयकी वासनाको न छोड़े, वह विरक्त भी व्यर्थ है। दानशून्य धनी और धर्माचरणशून्य निर्धन भी व्यर्थ है ! जो पण्डित पुराण पढ़कर सुकर्ममें रत नहीं है, वह भी नष्ट है। जो पुत्र माता-पिताकी भक्तिरहित है, वह भी नष्ट है और जिसे पति प्यारा नहीं है, वह स्त्री भी व्यर्थ है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें नित्य नवीन प्रेम न हो तो सभी कुछ व्यर्थ है॥ ११६॥

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हो?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हो?
कौन हृदयँ नहि लाग कठिन अति नारि-नयन-सर?
लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कौन नर?
सुर-नाग-लोक महिमंडलहुँ को जु मोह कीन्हो जय न?
कह तुलसिदासु सो ऊबरै, जेहि राख रामु राजिवनयन॥

क्रोधने किसको नहीं जलाया? कामने किसको वशीभूत नहीं किया? लोभने किसको दृढ़ फाँसीमें बाँधकर त्रस्त नहीं किया? किसके हृदयमें स्त्रियोंके नेत्ररूपी कठिन बाण नहीं लगे? और कौन मनुष्य धन पाकर आँखोंके रहते हुए भी अंधा नहीं हुआ? सुरलोक, पृथ्वीमण्डल (नरलोक) तथा नागलोक अर्थात् पाताललोकमें ऐसा कौन है, जिसको मोहने न जीता हो। गोसाईं तुलसीदासजी कहते हैं कि इनसे तो वही बच सकता है जिसकी रक्षा कमलनयन श्रीरामजी करते हैं॥ ११७॥

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकनि-बानतें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट-ज्यों जिनके मन आव न आँचे॥
लोभ सबै नटके बस है कपि-ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥

जो लोग भ्रुकुटिरूप कमानपर अच्छी प्रकार चढ़ाये हुए कामिनी-कटाक्षरूप बाणसे बचे हुए हैं, अभिमानरूप अवाँमें क्रोधरूप अग्निकी ज्वालासे जिनके मन घड़ेकी भाँति नहीं तपे हों तथा जो लोभरूप नटके अधीन होकर संसारमें बंदरकी तरह अनेक नाच नहीं नाचे— तुलसीदासजी कहते हैं—वे ही भगवान् श्रीरामके सच्चे दास हैं। यों तो सभी साधु अच्छे हैं॥ ११८॥

बेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुबाइ
जाइ तौ न जरनि धरनि-धन-धामकी।
कोटिक उपाय करि लालि पालिअत देह,
मुख कहिअत गति रामहीके नामकी॥
प्रगटैं उपासना, दुरावैं दुरबासनाहि,
मानस निवासभूमि लोभ-मोह-कामकी।
राग-रोष-इरिषा-कपट-कुटिलाईं भरे
तुलसी-से भगत भगति चहैं रामकी॥

जो लोग उत्तम (साधुका-सा) वेष बनाकर पवित्र एवं अमृत चूते हुए वचन बोलते हैं, किंतु जिनके हृदयसे पृथ्वी, धन और घरकी आग (तृष्णा) दूर नहीं होती; जो करोड़ों उपाय करके शरीरका लालन-पालन करते हैं, किंतु मुखसे कहते हैं कि हमें तो केवल रामनामका ही भरोसा है; जो अपनी उपासनाको तो प्रकट करते हैं, किंतु अपनी बुरी वासनाओंको छिपाते हैं तथा जिनके चित्त लोभ, मोह और कामके निवासस्थान बने हुए हैं, तुलसीदासजी कहते हैं—वे आसक्ति, क्रोध, ईर्ष्या, कपट और कुटिलतासे भरे हुए मेरे-जैसे भक्त भी रामकी भक्ति चाहते हैं। [अर्थात् जो पुरुष ऐसे कुटिल आचरण करते हुए भी भगवान्‌को रिझानेकी आशा रखते हैं, वे बड़े ही हास्यास्पद हैं।]॥ ११९॥

कालिहीं तरुन तन, कालिहीं धरनि-धन,
कालिहीं जितौंगो रन, कहत कुचालि है।
कालिहीं साधौंगो काज, कालिहीं राजा-समाज,
मसक ह्वै कहै, 'भार मेरे मेरु हालिहै'॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।

देखत-सुनत-समुझतहू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न कालहू को कालु कालि है॥

कुचाली लोग कहते हैं—मुझे कल ही तरुण शरीर प्राप्त हो जायगा; कल ही भूमि और धन प्राप्त हो जायँगे और कल ही मैं युद्धमें विजय प्राप्त कर लूँगा, कल ही मैं अपने सारे कार्य सिद्ध कर लूँगा और कल ही मैं राज-समाज जोड़ लूँगा। मच्छरके समान होकर भी वे कहते हैं, मेरे बोझसे मेरु पर्वत भी हिल जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं—इस कुप्रवृत्तिके कारण बहुत-से घर नष्ट हो गये हैं, इस समय भी नष्ट होते हैं तथा आगे भी होंगे। परंतु यह सब देख-सुन और समझकर भी वह कुप्रवृत्ति लोगोंको दीख नहीं पड़ती और न किसीने कभी यह कहा कि काल (आयु) का भी काल (अन्त) कल ही है॥ १२०॥

रामभक्तिकी याचना

भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी-सो मंद,
निंदैं सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोगु, हियँ हानि मानैं जानकीसु,
काहेको परेखो, पापी प्रपंची पोचु हौं॥
पेट भरिबेके काज महाराजको कहायों
महाराजहूँ कह्यो है प्रनत-बिमोचु हौं।
निज अघजाल, कलिकालकी करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं॥

भूत, भविष्यत् और वर्तमान—तीनों कालोंमें त्रिलोकीमें तुलसीदासके समान नीच कोई नहीं हुआ? सभी साधुजन इसकी निन्दा करते हैं, परंतु मैं सुनकर भी संकोच नहीं मानता। जानकीनाथ भगवान् राम भी इसे योग्य नहीं समझते; इसीसे मुझे अपनानेमें उन्हें अपने चित्तमें हानि जान पड़ती है। मुझे इस बातकी शिकायत भी क्यों होनी चाहिये; क्योंकि वास्तवमें ही मैं बड़ा पापी, पाखण्डी और नीच हूँ। मैं पेट भरनेके लिये ही महाराजका कहलाया और महाराजने भी कहा है कि 'मैं अपने शरणागतका उद्धार कर देता हूँ।' किंतु अपनी पापराशि और कलिकालकी कुटिलता देखकर मैं व्याकुल हो जाता हूँ और उसी (अपने उद्धारके ही) विषयमें चिन्ता करने लगता हूँ॥ १२१॥

धर्म कें सेतु जगमंगलके हेतु भूमि-
भारु हरिबेको अवतारु लियो नरको।
नीति औ प्रतीति-प्रीतिपाल चालि प्रभु, मानु
लोक-बेद राखिबेको पनु रघुबरको॥
बानर-बिभीषनकी ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंगु सुनें अंगु जरै अनुचरको।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि,
तुलसी तिहारो घर जायऊ है घरको॥

धर्मके सेतु भगवान् संसारका कल्याण करनेके लिये और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए; नीति, प्रतीति और प्रीतिका पालन करना प्रभुका स्वभाव ही है तथा लोक और वेदकी मर्यादा रखना यह भी श्रीरघुवीरका प्रण है। आप सुग्रीव और विभीषणके ऋणी हैं, यह बात सुनकर दासका अङ्ग-अङ्ग जलता है [कि मुझपर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते?]। अत: मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, अपने प्रणकी रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घरका घर-जाया (पुश्तैनी) सेवक है॥ १२२॥

नाम महाराजके निबाह नीको कीजै उर
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम! बार यहि मेरी ओर चष-कोर
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥
तुलसी बिलोकि कलिकालकी करालता
कृपालको सुभाउ समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँतिको, त्रिलोकनाथ लोकबस
आपनो न सोचु, स्वामी-सोचहीं सुखात हौं॥

महाराजके नामके साथ अच्छी प्रकार निर्वाह करनेवाला (अर्थात् रामनाम जपनेवाला) मनसे सबको अच्छा लगता है, परंतु मैं लोगोंको अच्छा नहीं लगता। अत: हे राम ! इस बार आप मेरी ओर कृपादृष्टि कीजिये, आपके कृपाकटाक्षके लिये मैं लालायित हूँ, जिस प्रकार दरिद्र स्नेहके लिये अथवा स्नेहयुक्त पदार्थों (पकवानों) के लिये लालायित रहता है। तुलसीदासजी कहते

हैं—मैं कलिकालकी करालता और कृपालु प्रभुके स्वभावको समझकर सकुचाता हूँ। इस समय सारा संसार एक-सा हो रहा है। [सभी मेरी निन्दा करनेवाले हैं] और आप त्रिलोकीनाथ होकर भी लोकके अधीन हैं। किंतु मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, मैं तो प्रभुके सोचमें ही सूखा जाता हूँ [कि कहीं लोग यह न कहने लगें कि रामजी भी कलियुगमें अपना स्वभाव छोड़कर करुणारहित हो गये]॥ १२३॥

प्रभुकी महत्ता और दयालुता

तौलौं लोभ लोलुप ललात लालची लबार,
बार-बार लालचु धरनि-धन-धामको।
तबलौं बियोग-रोग-सोग, भोग जातनाको
जुग सम लागत जीवनु जाम-जामको।
तौलौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु
तुलसी है किंकरु बिमोह-कोह-कामको।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौलौं जनु भयो न बजाइ राजा रामको॥

जबतक तुलसीदास राजा रामका खुल्लमखुल्ला दास नहीं हो जाता, तभीतक वह लोभके कारण लोलुप, लालची और वाचाल बना हुआ टुकड़े-टुकड़ेके लिये लालायित रहता है; और पृथ्वी, धन एवं गृह आदिके लिये बार-बार ललचाता रहता है; तभीतक उसे वियोग और रोगका शोक रहता है, तभीतक उसे यातना भोगनी पड़ती है, और तभीतक उसे पल-पलका जीवन युगके समान जान पड़ता है, तभीतक उसका शरीर दुःख और दरिद्रताके कारण सर्वदा अत्यन्त जलता रहता है और तभीतक वह मोह, क्रोध और कामका गुलाम है; और तभीतक सारे दुःख तो उसके हिस्सेमें हैं और सारे सुख दूसरोंके हैं॥ १२४॥

तौलौं मलीन, हीन, दीन, सुख सपनें न,
जहाँ-तहाँ दुखी जनु भाजनु कलेसको।
तौलौं उबेने पाय फिरत पेटौ खलाय
बाय मुह सहत पराभौ देस-देसको॥

तबलौं दयावनो दुसह दुख दारिदको,
साथरीको सोइबो, ओढ़िबो झूने खेसको।
जबलौं न भजै जीहँ जानकी-जीवन रामु,
राजनको राजा सो तौ साहेबु महेसको॥

जो राजाओंके राजा और महेश्वरके भी ईश्वर हैं, उन जानकीनाथका जबतक जिह्वासे भजन नहीं करता, तभीतक जीव दीन, हीन और मलिन रहता है, उसे स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता और जहाँ-तहाँ वह दुःखी मनुष्य क्लेशका पात्र होता है; तभीतक वह नंगे पैर पेट खलाये और मुँह बाये देश-देशका तिरस्कार सहन करता फिरता है तथा तभीतक उसे दरिद्रताका दयावह और दुःसह दुःख घास-फूसकी शय्यापर सोना और झीने खेसका ओढ़ना रहता है॥ १२५॥

ईसनके ईस, महाराजनके महाराज,
देवनके देव, देव! प्रानहुके प्रान हौ।
कालहूके काल, महाभूतनके महाभूत,
कर्महूके करम, निदानके निदान हौ॥
निगमको अगम, सुगम तुलसीहू-सेको
एते मान सीलसिंधु, करुनानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोलको न वारापार,
बड़ी साहबीमें नाथ! बड़े सावधान हौ॥

हे नाथ आप ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर, महाराजाओंके महाराज, देवोंके देव और प्राणोंके भी प्राण हैं। आप कालके भी काल, महाभूतोंके भी महाभूत, कर्मके भी कर्म और कारणके भी कारण हैं। किंतु वेदके लिये अगम होनेपर भी आप तुलसीदास-जैसे साधारण पुरुषके लिये सुलभ हैं। इतने महान् होनेपर भी आप शीलके समुद्र और करुणाके भण्डार हैं। आपकी महिमा अपार है, आपकी किसी भी वाणी (वेद-पुराण आदि) का वारापार नहीं है। किंतु इतना बड़ा प्रभुत्व रहते हुए भी आप बड़े ही सावधान हैं, [इसीसे यदि कोई अत्यन्त तुच्छ प्राणी भी आपके अनन्य शरणागत हो जाता है तो आप उसकी पूरी-पूरी चिन्ता रखते हैं]॥ १२६॥

आरतपाल कृपाल जो रामु जेहीं सुमिरे तेहिको तहँ ठाढ़े।
नाम-प्रताप-महामहिमा अँकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े॥

सेवक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥

भगवान् राम दीन-दु:खियोंके रक्षक एवं दयामय हैं। उनका जिसने जहाँ स्मरण किया, उसके लिये वे वहीं खड़े हो जाते हैं। उनके नामके प्रभावकी बड़ी ही महिमा है, जिसने खोटोंको बहुमूल्य और छोटोंको बड़ा कर दिया। उनके एक-से-एक बढ़कर अनेकों सेवक हुए, जिनमेंसे कोई भी आध्यात्मिकादि त्रितापोंसे संतप्त नहीं हुए। परंतु प्रेम तो मैं प्रह्लादका ही मानता हूँ, जिसने पत्थरमेंसे भगवान्‌को प्रकट कर दिया॥ १२७॥

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ?' 'सब ठाऊँ हैं', 'खंभमें?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरि बिदारि भए बिकराल, कहें प्रहलादहिकें अनुरागे।
प्रीति-प्रतीति बड़ी तुलसी, तबतें सब पाहन पूजन लागे॥

(हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीको मारनेके लिये) तलवार निकाल ली, उसके मनमें कहीं तनिक भी दया न थी, किंतु कालके समान भयंकर पिताको देखकर भी प्रह्लादजी भागे नहीं! जब उसने कहा—'बता तेरा राम कहाँ है?' तो बोले—'सर्वत्र हैं।' इसपर उसने पूछा—'क्या इस खंभमें भी है?' तो प्रह्लादजीने कहा— 'हाँ।' उनकी इस हाँकको सुनते ही नृसिंहजी प्रकट हो गये और शत्रुका नाश कर क्रोधवश बड़े भयंकर बन गये। फिर वे प्रह्लादजीके प्रार्थना करनेपर ही शान्त हुए। तुलसीदासजी कहते हैं—इससे भगवान्‌के प्रति लोगोंका प्रेम और विश्वास बढ़ गया और तभीसे लोग पाषाण (पाषाणमयी प्रतिमाओं) का पूजन करने लगे॥ १२८॥

अंतरजामिहुतें बड़े बाहेरजामि हैं राम, जे नाम लियेतें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक-बोलनि कान कियेतें॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबेकी न बावरि बात बियेतें।
पैज परें प्रहलादहुको प्रगटे प्रभु पाहनतें, न हियेतें॥

बहिर्गत सगुणरूप भगवान् राम अन्तर्यामी निराकार ईश्वरसे भी बड़े हैं, क्योंकि जिस प्रकार हालकी ब्यायी गौ अपने बच्चेका शब्द सुनते ही स्तनोंमें दूध उतार दौड़ी आती है, उसी प्रकार वे भी (अपना नाम सुनकर) दौड़े आते

हैं। तुलसीदास तो अपनी समझकी बात कहता है, ऐसी बावली बातें दूसरे लोगोंसे कहे जानेयोग्य नहीं हुआ करतीं, प्रह्लादके प्रतिज्ञा करनेपर उसके लिये प्रभु पत्थरसे ही प्रकट हो गये, हृदयसे नहीं॥ १२९॥

बालकु बोलि दियो बलि कालको, कायर कोटि कुचालि चलाई।
पापी है बाप, बड़े परितापतें आपनि ओरतें खोरि न लाई॥
भूरि दईं बिषमूरि, भईं प्रहलाद-सुधाईं सुधाकी मलाई।
रामकृपाँ तुलसी जनको जग होत भलेको भलाई भलाई॥

कायर हिरण्यकशिपुने करोड़ों कुचालें कीं और बालक प्रह्लादको बुलाकर कालको बलि दे दिया। पिता हिरण्यकशिपु बड़ा ही पापी था, उस दुष्टने प्रह्लादजीको कष्ट देनेमें अपनी ओरसे कोई कसर नहीं रखी। उसने बहुत-सी विषमूलें दीं; किंतु प्रह्लादजीकी साधुतासे वे अमृतकी मलाई बन गयीं। तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान् रामकी कृपासे संसारमें उनके साधु सेवककी सब प्रकार भलाई ही होती है॥ १३०॥

कंस करी बृजबासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पंडूके पूत सपूत, कपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई॥
कान्ह कृपाल बड़े नतपाल, गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै तुलसी, जग होइ भले को भलाई भलाई॥

कंसने व्रजवासियोंके प्रति बहुत बुरी तरहसे कुचाल की, परंतु उसकी एक भी चाल न चली। पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरादि बड़े साधु थे; उनके लिये कुपूत दुर्योधन छलनेमें छोटे कलियुगके समान हो गया (अर्थात् उसने भी उन्हें छलकर पददलित करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ी); परंतु कृपालु श्रीकृष्णचन्द्र बड़े ही शरणागतरक्षक हैं, अतः अपनी ही दुष्टताके कारण वे दुष्ट (बकासुर आदि) राक्षस स्वयं नष्ट हो गये। तुलसीदास अपने सच्चे विश्वासकी बात कहता है कि संसारमें भलेकी तो भलाई-ही-भलाई होती है॥ १३१॥

अवनीस अनेक भए अवनीं, जिनके डरतें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं॥
ते मिलये धरि धूरि सुजोधनु, जे चलते बहु छत्रकी छाहीं।
बेद-पुरान कहैं, जगु जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं॥

इस पृथ्वीपर ऐसे अनेकों राजा हो गये हैं, जिनके भयके कारण देवतालोग चिन्तामें ही सूखे जाते थे। मनुष्य, राक्षस और देवताओंको सतानेके लिये एक रावण ही क्या संसारमें किसीसे कम रचा गया था ? वे सब और दुर्योधन भी, जो कि अनेकों छत्रोंकी छायामें चलते थे, पृथ्वीकी धूलिमें मिल गये। वेद-पुराण कहते हैं और सारा संसार भी जानता है कि श्रीगोविन्दको अभिमान अच्छा नहीं लगता॥ १३२॥

गोपियोंका अनन्य प्रेम*

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहि जानो बियोगु-सो रोगु है आगें झुकी तब हौं तेहि सों तरजी॥
अब देह भई पट नेहके घाले सों, ब्यौंत करै बिरहा-दरजी।
ब्रजराजकुमार बिना सुनु भृंग! अनंगु भयो जियको गरजी॥

[श्रीकृष्णचन्द्रके मथुरा पधार जानेपर उनकी वियोग-व्यथासे पीड़ित कोई व्रजबाला योग सिखाने आये हुए भगवान्‌के प्रिय सखा उद्धवजीको भ्रमरके व्याजसे कहती है—] हे भ्रमर ! जिस समय मेरे नेत्रोंने इस ठगिया श्यामसुन्दरसे प्रीति जोड़ी थी, उसी समय एक चतुर सखीने मुझे बलपूर्वक रोका था, किंतु मैं नहीं जानती थी कि आगे इसमें वियोग-जैसा रोग निकलेगा, इसलिये उस समय मैं उसपर नाराज हुई और उसका तिरस्कार किया। अब नेह लगानेसे मेरी देह मानो वस्त्र हो गयी है, उसे विरहरूपी दर्जी ब्योंत रहा है और हे भृङ्ग! सुन, उस व्रजराजदुलारेके बिना काम मेरे जीका ग्राहक हो गया है॥ १३३॥

जोग-कथा पठई ब्रजको, सब सो सठ चेरीकी चाल चलाकी।
ऊधौजू! क्यों न कहै कुबरी, जो बरीं नटनागर हेरि हलाकी॥
जाहि लगै परि जाने सोई, तुलसी सो सोहागिनि नंदललाकी।
जानी है जानपनी हरिकी, अब बाँधियैगी कछु मोटि कलाकी॥

हे उद्धवजी ! व्रजको जो यह योगका संदेश भेजा गया है, वह सब उस दुष्टा दासीकी चालाकीभरी चाल है। अब भला कुबड़ी ऐसा क्यों न कहेगी,

* यहाँ प्रसङ्ग न होनेपर भी गोपियोंका अनन्य प्रेम प्रदर्शित करनेके लिये ही श्रीगोसाईंजीने आगेके कवित्त कहे हैं।

जिसे घातक श्रीकृष्णने खोजकर वरण किया है। विरहकी आग कैसी होती है—यह तो वही जान सकती है जिसे वह लगती है, आज कुब्जा तो नन्दनन्दनकी सुहागिन बनी हुई है [उसे हमारी पीरका क्या पता?] किंतु इससे हमें श्यामसुन्दरकी बुद्धिमानीका पता लग गया [उन्हें कूबड़ बहुत पसंद है; इसलिये] अब हम भी पीठपर बनावटी मोटरी बाँधा करेंगी [जिससे कुबड़ी दिखायी दिया करें]॥ १३४॥

पठयो है छपदु छबीलें कान्ह कैहूँ कहूँ
खोजि कै खवासु खासो कूबरी-सी बालको।
ग्यानको गढ़ैया, बिनु गिराको पढ़ैया, बार-
खालको कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-सालको॥
प्रीतिको बधिक, रस-रीतिको अधिक, नीति-
निपुन, बिबेकु है, निदेसु देस-कालको।
तुलसी कहें न बनै, सहें ही बनैगी सब
जोगु भयो जोगको बियोगु नंदलालको॥

छबीले श्यामसुन्दरने कहींसे जैसे-तैसे ढूँढ़कर कुबड़ी-जैसी बालाका यह भ्रमररूप बड़ा उत्तम सेवक भेजा है। यह बड़ी ज्ञानकी बातें गढ़नेवाला, बिना जिह्वाके ही बोलनेवाला, बालकी खाल खींचनेवाला और हृदयकी पीड़ाको बढ़ानेवाला है। यह प्रीतिका वध करनेवाला, विशेषतया रसरीतिको नष्ट करनेवाला और बड़ा नीतिकुशल एवं विवेकी है। सो इसमें इसका कोई दोष नहीं, देश-कालका ऐसा ही विधान है। तुलसीदासजी कहते हैं, अब कहनेसे कुछ प्रयोजन सिद्ध थोड़े ही होगा, अब तो सब कुछ सहना ही पड़ेगा; क्योंकि जब नन्दनन्दनसे वियोग हो गया तब योगके लिये अवसर आ ही गया॥ १३५॥

विनय

हनूमान! ह्वै कृपाल, लाडिले लखनलाल!
भावते भरत! कीजै सेवक-सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो
बिगरेतें आपु ही सुधारि लीजै भाय जू॥

मेरी साहिबिनी सदा सीसपर बिलसति
देबि क्यों न दासको देखाइयत पाय जू।
खीझहूमें रीझिबैकी बानि, सदा रीझत हैं,
रीझे ह्वै हैं, रामकी दोहाई, रघुराय जू॥

हे श्रीहनुमान्‌जी! हे लाड़िले लखनलाल! हे मनभावन भरतजी! तनिक कृपाकर इस सेवकको सहायता कीजिये। यह दीन, दुर्बल और दयापात्र दास आपसे विनय करता है; इससे यदि कोई भाव बिगड़ जाय तो आप ही सुधार लें। मेरी स्वामिनी सदा मेरे मस्तकपर विराजमान रहती हैं, सो हे देवि! आप भी इस दासको अपने चरणोंका दर्शन क्यों नहीं करातीं? हमारे प्रभुका तो खीझनेमें भी रीझनेका स्वभाव है, वे तो सदा ही प्रसन्न रहते हैं; अतः रामकी दुहाई, इस समय भी श्रीरघुनाथजी अवश्य रीझे होंगे॥ १३६॥

बेषु बिरागको, रागभरो मनु, माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथको नामु लै बेचि हौं, पातकी पावँर प्राननि पोसों॥
एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु, अंब! कि मेरो तूँ मोसों।
स्वारथको परमारथको परिपूरन भो, फिरि घाटि न होसों॥

माताजी! मैं तुमसे ठीक-ठीक कहता हूँ, मेरा वेष तो वैराग्यका-सा है; किंतु मन रागसे भरा हुआ है। तुम्हारे ही स्वामीका नाम बेचकर (अर्थात् रामके नामपर भीख माँगकर) मैं इन पापी पामर प्राणोंका पोषण करता हूँ। इतने बड़े अपराधी और पापीसे, हे मातः! तू यह कह दे कि 'तू मेरा है और मुझीसे उत्पन्न हुआ है।' इससे मेरे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध हो जायँगे; फिर मेरे अंदर किसी प्रकारकी कमी नहीं रह जायगी॥ १३७॥

सीतावट-वर्णन

जहाँ बालमीकि भए ब्याधतें मुनिंद साधु
'मरा मरा' जपें सिख सुनि रिषि सातकी।
सीयको निवास, लव-कुसको जनमथल
तुलसी छुअत छाँह ताप गरै गातकी॥
बिटपमहीप सुरसरित समीप सोहै,
सीताबटु पेखत पुनीत होत पातकी।

बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजातकी॥

जहाँ सप्तर्षियोंका उपदेश सुनकर (राममन्त्रको उलटे क्रमसे) 'मरा-मरा' जपते हुए वाल्मीकिजी व्याधसे महामुनि साधु हो गये, जो श्रीसीताजीका निवासस्थान और कुश तथा लवका जन्मस्थान था, तुलसीदासजी कहते हैं—जहाँकी छायाका स्पर्श होते ही शरीरका सारा ताप शान्त हो जाता है, वह वृक्षराज सीतावट श्रीगङ्गाजीके तटपर शोभायमान है। उसके दर्शनमात्रसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है। यह स्थान वारिपुर और दिगपुर—इन दो गाँवोंके बीचमें है* और श्रीजानकीजीके चरणकमलोंसे अङ्कित है॥ १३८॥

मरकतबरन परन, फल मानिक-से
लसै जटाजूट जनु रूपबेष हरु है।
सुषमाको ढेरु कैधौं सुकृत-सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगलको घरु है॥
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये
प्रतीति मानि तुलसी, बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै
रामरवनीको बटु कलि कामतरु है॥

उसके पत्ते मरकतमणिके समान हरे तथा फल माणिक्यके सदृश (लाल रंगके) हैं। अपनी जटाओंके कारण वह ऐसी शोभा देता है, मानो वृक्षरूपमें महादेवजी ही हों। वह मानो सुन्दरताका पुञ्ज है, अथवा सुकृतका सुमेरु है, किंवा सब प्रकारकी सम्पत्ति, आनन्द और मङ्गलका घर है। यदि 'यह किसका स्थान है' [अर्थात् जानकीजीका निवासस्थल है] इसका विचार करके विश्वास और प्रीतिपूर्वक उसका सेवन किया जाय तो वह सब प्रकारके इच्छित फल देता है। वह सुन्दर भूमि श्रीगङ्गाजीके तटपर सुशोभित है; यह रामवल्लभा श्रीजानकीजीका वट कलियुगमें कल्पवृक्षके समान है॥ १३९॥

देवधुनि पास, मुनिबासु, श्रीनिवासु जहाँ,
प्राकृतहुँ बट-बूट बसत पुरारि हैं।

* यह स्थान प्रयाग और काशीके बीचमें सीतामढ़ी नामसे प्रसिद्ध है।

जोग-जप-जागको, बिरागको पुनीत पीठु
राँगिन पै सीठ डीठि बाहरी निहारि हैं॥
'आयसु', 'आदेस', 'बाबू' भलो-भलो भावसिद्ध
तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतनको तौ कामतरुतें अधिक,
सियबटु सेयें करतल फल चारि हैं॥

साधारण वटवृक्षमें भी श्रीमहादेवजीका निवास होता है, फिर इसके समीप तो गङ्गाजीका तट तथा मुनिवर वाल्मीकिजीका आश्रम है; जहाँ श्रीसीताजीने निवास किया था। [अतः इसकी महिमाका तो वर्णन ही कौन कर सकता है?] यह योग, जप, यज्ञ और वैराग्यके लिये तो बड़ा पवित्र पीठ है; किंतु रागी पुरुषोंको, जो इसे बाहरी दृष्टिसे देखेंगे, यह बड़ा रूखा जान पड़ता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यहाँके लोग विचारपूर्वक 'जो आज्ञा', 'आदेश', 'भैया' आदि शिष्ट शब्दोंका स्वभावसे ही प्रयोग करते हैं। यह सीतावट रामभक्तोंके लिये तो कल्पवृक्षसे भी अधिक है; क्योंकि इसका सेवन करनेसे [अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष] चारों फल करतलगत हो जाते हैं [जब कि कल्पवृक्षसे अर्थ, धर्म और काम—केवल तीन ही फल मिलते हैं]॥ १४०॥

चित्रकूट-वर्णन

जहाँ बनु पावनो, सुहावने बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंदु खेत-खूँट-सो।
सीता-राम-लखन-निवासु, बासु मुनिनको,
सिद्ध-साधु-साधक सबै बिबेक-बूट-सो॥
झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनि मंजुल महेस-जटाजूट सो।
तुलसी जौं रामसों सनेहु साँचो चाहिये तौ,
सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो॥

जहाँका वन अति पवित्र है और पशु-पक्षी अत्यन्त सुहावने हैं तथा जिसे खेतके टुकड़ेके समान (हरा-भरा) देखकर बड़ा आनन्द होता है; जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका निवास था, जहाँ अनेकों मुनिजन रहते हैं तथा जो सिद्ध,

साधु और साधकोंके लिये विवेकरूपी वृक्षके समान है; जहाँ सभी झरनोंसे अति शीतल और पवित्र जल झरता रहता है तथा मन्दाकिनी नदी श्रीमहादेवजीके जटाजूटके समान जान पड़ती है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें भगवान् रामके सच्चे स्नेहकी चाह है तो प्रेमपूर्वक अद्भुत चित्रकूटका सेवन करो॥ १४१॥

मोह-बन-कलिमल-पल-पीन जानि जियँ
साधु-गाइ-बिप्रनके भयको नेवारिहै।
दीन्ही है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल
लखन समत्थ बीर हेरि-हेरि मारिहै॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ
बारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानो
पातकके ब्रात घोर सावज सँघारिहै॥

मोहरूपी वनमें पापराशिरूप सावज (हिंस्र पशु) कलिकल्मषरूप मांससे मोटे हो रहे हैं, ऐसा चित्तमें जानकर श्रीरघुनाथजीने आज्ञा दी है; अत: समर्थ वीर लखनलालकी सहायता पा चित्रकूट अचल अहेरी होकर उनकी घातमें बैठे हुए हैं। वे उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर मारेंगे तथा इस प्रकार साधु, गौ और ब्राह्मणोंके भयको हटावेंगे। उसके लिये वे मन्दाकिनी-जैसी मनोहर कमान तथा उसके जलकी धारारूप बाणोंको अपने करकमलोंसे धैर्यपूर्वक धारण करेंगे॥ १४२॥

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खरखौकी।
चारु चुआ चहुँ ओर चलैं, लपटैं-झपटैं सो तमीचर तौंकी॥
क्यौं कहि जात महासुषमा, उपमा तकि ताकत है कबि कौं की।
मानो लसी तुलसी हनुमान-हिएँ जगजीति जरायकी चौकी॥

[एक समय चित्रकूटमें दावाग्नि लगी; गोसाईंजी अब उसीका वर्णन करते हैं—] इस समय चित्रकूटमें डटकर दावानल लगी हुई है और इस प्रकार प्रज्वलित हो रही है, जैसे हनुमान्‌जीने लङ्कामें आग लगायी थी। दावाग्निके तापसे तपकर सुन्दर पशु चारों ओरको इस तरह भागे जाते हैं, जैसे लङ्कामें आगकी ज्वालाओंकी लपकसे तोंसे हुए राक्षसलोग इधर-उधर भागे थे। उस

समयकी महान् शोभाका वर्णन किस प्रकार किया जाय? उसकी उपमाको विचारता हुआ कवि बड़ी देरसे ताकता रह गया है। [परंतु उसे इसके अनुरूप कोई उपमा नहीं मिलती] ऐसा जान पड़ता है, मानो हनुमान्‌जीके वक्षःस्थलपर संसारको जीतनेका जड़ाऊ पदक (तमगा) सुशोभित हो॥ १४३॥

तीर्थराज-सुषमा

देव कहैं अपनी-अपना, अवलोकन तीरथराजु चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाजु भलो रे॥
सोहै सितासितको मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनुके धौल कलोरे॥

देवतालोग आपसमें कहते हैं—अरे! तीर्थराज प्रयागका दर्शन करने चलो। उनके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े अपराध नष्ट हो जाते हैं; वहाँ अच्छे-अच्छे साधु स्नान किया करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—वहाँ श्रीगङ्गा और यमुनाके शुभ्र एवं श्यामवर्ण जलका संगम बड़ा ही शोभायमान जान पड़ता है, उसकी तरङ्गोंको देखकर हृदय बड़ा हर्षित होता है, मानो इधर-उधर फैले हुए कामधेनुके शुक्लवर्ण मनोहर बछड़े हरी-हरी घास चर रहे हों॥ १४४॥

श्रीगङ्गा-माहात्म्य

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥
पूजाको साजु बिरंचि रचैं तुलसी, जे महातम जाननिहारे।
ओककी नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग! तरंग तिहारे॥

जिस मनुष्यने गङ्गास्नानके लिये मनमें जानेका विचारमात्र कर लिया, उसके करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो गया। उसे चलता देखकर [उसे वरण करनेके लिये] देवाङ्गनाएँ आपसमें झगड़ने लगती हैं, देवराज इन्द्र उसके लिये विमान बनाकर सजाने लगते हैं, ब्रह्माजी जो कि उसके माहात्म्यको जाननेवाले हैं, उसके पूजनकी सामग्री जुटाने लगते हैं और हे गङ्गाजी ! तुम्हारी तरङ्गोंका दर्शन होते ही विष्णुलोकमें (उसके लिये) घरकी नींव पड़ जाती है। (अर्थात् उसका विष्णुलोकमें जाना निश्चित हो जाता है।)॥ १४५॥

ब्रह्मु जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको।
जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, साहेबु, दीन-दुनीको॥
सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनीको॥

जिस परब्रह्म परमात्माको वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिसके गुण और ज्ञानकी थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सकते; जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला, देवताओंका स्वामी तथा लोक-परलोकका प्रभु है; जो ब्रह्मा, शिव और मुनिजनोंका भी स्वामी है, निश्चय वही जलरूप हो गया है। तुलसीदासजी कहते हैं—अरे, विश्वास करके सर्वदा श्रीगङ्गाजलका ही सेवन क्यों नहीं करता?॥ १४६॥

बारि तिहारो निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहौंगो।
ईसु ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभुकी समताँ बड़े दोष दहौंगो॥
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीरको ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी ! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥

हे गङ्गे ! तुम्हारे जलके दर्शनके प्रभावसे यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण मुझे पाप लगेगा [क्योंकि तुम्हारा जन्म विष्णुभगवान्के चरणोंसे है और यदि मैं भी विष्णु हो गया तो अपने चरणोंसे तुम्हारा स्पर्श होनेके कारण मुझे पापका भागी होना पड़ेगा]; और यदि महादेव हो गया तो सिरपर धारण करनेसे मुझे डर है कि इस प्रकार अपने प्रभु भगवान् शंकरकी समता करनेके बड़े भारी अपराधसे दुःख पाऊँगा। इसलिये, भले ही मुझे बारम्बार शरीर धारण करना पड़े, मैं तो श्रीरघुनाथजीका दास होकर ही तुम्हारे तीरपर रहूँगा। हे भागीरथि ! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ—मैं वही बात कहूँगा, जिससे फिर दोष न लगे॥ १४७॥

अन्नपूर्णा-माहात्म्य

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल-तूरना॥

प्यासेहूँ न पावै बारि, भूखें न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोकको अगार, दुखभार भरो तौलौं जन
जौलौं देबी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥

जबतक देवी अन्नपूर्णा कृपा नहीं करतीं, तभीतक मनुष्य लालची होकर (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) लालायित होता है और दीन तथा मलिन-मुख हो द्वार-द्वारपर बिलबिलाता रहता है, परंतु उसके मनकी चिन्ता दूर नहीं होती; कहीं श्राद्ध, विवाह अथवा कोई उत्सव तो नहीं, इस बातकी टोहमें रहता है, चञ्चल होकर इधर-उधर घूमता है और यदि कहीं ढोल या तुरहीका शब्द होता है तो पूछता है [कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है?] प्यास लगनेपर उसे जल नहीं मिलता, भूख होनेपर चार चने भी नहीं मिलते। पहाड़के समान भोजनकी इच्छा होती है, परंतु घूरेपर पड़ी दाल भी नहीं मिलती। इस प्रकार वह शोकका आश्रयस्थान और दुःखके भारसे दबा रहता है॥ १४८॥

शंकर-स्तवन

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंगबर॥
मुंडमाल, बिधु बाल भाल, डमरू कपालु कर।
बिबुधबृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, बिषभोजन, भवभयहरन।
कह तुलसिदासु सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन॥

श्रीमहादेवजी शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, वे कामदेवका दलन करनेवाले और सर्वदा असंग हैं। उनके सिरपर श्रीगङ्गाजी हैं, अर्धाङ्गमें पार्वतीजी हैं तथा अच्छे-अच्छे सर्प ही उनके आभूषण हैं। उनके गलेमें मुण्डमाला है, मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा है तथा हाथोंमें डमरू और कपाल सुशोभित हैं। देवताओंके समाजरूपी नवीन कुमुद-कुसुमके लिये शूलधारी भगवान् शंकर साक्षात् चन्द्रमा हैं। वे सुखकी जड़, त्रिपुरदैत्यके शत्रु, तीन नेत्रोंवाले, दिगम्बर, विषभोजी एवं संसारका भय निवृत्त करनेवाले श्रीमहादेवजी भजन किये जानेपर बड़ी सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं; मैं उन श्रीशिवशंकरकी शरण हूँ॥ १४९॥

गरल-असन दिगबसन ब्यसनभंजन जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर सच्चिदानंदघन॥
बिकटबेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम अभिरामधाम नित रामनाम रुचि॥
कंदर्पदर्प दुर्गम दमन उमारमन गुनभवन हर।
त्रिपुरारि! त्रिलोचन! त्रिगुनपर! त्रिपुरमथन! जय त्रिदसबर॥

जो विषभक्षण करनेवाले, दिगम्बर, दुःखहारी, भक्तमनरञ्जन, कुन्द, चन्द्र एवं कर्पूरके समान गौरवर्ण, सच्चिदानन्दघन और विकटवेषधारी हैं; जिनके हृदयपर शेषजी और मस्तकपर स्वभावसे ही परम पवित्र श्रीगङ्गाजी विराजमान हैं, जो कल्याणस्वरूप कामनाशून्य और सौन्दर्य-धाम हैं तथा जिनकी रामनाममें नित्य रुचि है, कामदेवके दुर्गम दर्पका दमन करनेवाले उन उमारमण गुणमन्दिर पापापहारी त्रिपुरारि त्रिनयन त्रिगुणातीत त्रिपुरविदारण देवेश्वरकी जय हो, जय हो॥ १५०॥

अरध अंग अंगना, नामु जोगीसु, जोगपति।
बिषम असन, दिगबसन, नाम बिस्वेसु बिस्वगति॥
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष-भूति-बिभूषन।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन॥
बिकराल-भूत-बेताल-प्रिय भीम नाम, भवभयदमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसिदास-संसय-समन॥

अहो! जिनके अर्धाङ्गमें पार्वतीजी रहती हैं, परंतु जिनका नाम योगीश्वर अथवा योगपति है, जिनका भाँग-धतूरा आदि विषम भोजन तथा दिशाएँ ही वस्त्र हैं, किंतु जो विश्वेश्वर और विश्वके आश्रयस्थान कहलाते हैं; जिनके हाथमें कपाल, सिरपर सर्पोंकी माला और शरीरमें हालाहल विष और भस्मकी ही शोभा है; किंतु जिनका नाम शुद्ध, अविरुद्ध, अमर, अमल और निर्दोष है; जिनका विकराल-भूत-बेताल-प्रिय ऐसा भयंकर नाम है; किंतु जो भव-भयका नाश करनेवाले हैं, तुलसीदासजी कहते हैं—वे महादेवजी सब प्रकार समर्थ हैं, उनकी महिमा अकथनीय है और वे मेरे संदेहोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं॥ १५१॥

भूतनाथ भयहरन भीम भयभवन भूमिधर।
भानुमंत भगवंत भूतिभूषन भुजंगबर॥

भव्य भावबल्लभ भवेस भव-भार-बिभंजन।
भूरिभोग भैरव कुजोगगंजन जनरंजन॥
भारती-बदन बिष-अदन सिव ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह तुलसिदासु किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन॥

जो भूतोंके स्वामी, सब प्रकारके भय दूर करनेवाले, भयंकर भयके आश्रयस्थान, भूमिको धारण करनेवाले, तेजोमय, ऐश्वर्यवान्, भस्म और सर्परूप आभूषण धारण करनेवाले, कल्याणस्वरूप, भावप्रिय, संसारके स्वामी और संसारके भारको नष्ट करनेवाले हैं; जो महान् भोगशाली, भीषण, कुयोगका नाश करनेवाले, भक्तोंको आनन्दित करनेवाले, सरस्वतीरूप मुखवाले, विषभोजी, कल्याणस्वरूप, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निरूप नेत्रोंवाले तथा कल्याणधाम और कामदेवका नाश करनेवाले हैं, तुलसीदास कहते हैं—हे मन ! तू उनका भजन क्यों नहीं करता ? ॥ १५२ ॥

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि मागिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो॥

ब्रह्माजी कहते हैं—हे पार्वति ! तुम अपने पतिको समझा दो—यह बड़ा बावला और भोला दानी है। देखो, स्वयं तो नंगा फिरता है; परंतु यदि किसी याचकको देखता है तो कहता है कि थोड़ा मत माँगना, यहाँ कुछ कमी नहीं है। संसारमें जितने याचक जोड़े जुट सकते, उन्हें जुटाकर उन सब कंगालोंको प्रसन्न होकर इन्द्र बना देता है। उनके लिये स्वर्ग तैयार करते-करते मेरी नाकमें दम आ गया है, परंतु पिनाकी (पिनाकपाणि महादेव) मेरा कुछ भी अहसान नहीं मानते॥ १५३ ॥

बिषु पावकु ब्याल कराल गरें, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत-बेताल सखा, भव नामु, दलै पलमें भवके भय गाढ़े॥
तुलसीसु दरिद्र-सिरोमनि, सो सुमिरें दुख-दारिद होहिं न ठाढ़े।
भौनमें भाँग, धतुरोई आँगन, नागेके आगें हैं मागने बाढ़े॥

यह स्वयं तो गलेमें भयंकर विष और भीषण सर्प तथा [नेत्रामें] अग्नि धारण किये हुए हैं, किंतु इसके शरणागत तीनों तापोंसे दग्ध नहीं होते। इसके साथी तो भूत-वेतालादि हैं और नाम भी 'भव' है; परंतु यह भव (संसार) के भारी भयोंको पलभरमें नष्ट कर देता है। यह तुलसीका स्वामी (महादेव)

है तो दरिद्रशिरोमणि-सा, किंतु इसका स्मरण करनेपर दुःख और दारिद्र्य ठहरने नहीं पाते। इसके घरमें केवल भाँग है और आँगनमें केवल धतूरा; परंतु इस नंगेके आगे माँगनेवाले निरन्तर बढ़ते ही रहते हैं॥ १५४॥

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, घरन्यो बरदा है।
धाम धतूरो, बिभूतिको कूरो, निवासु जहाँ सब लै मरे दाहैं॥
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँगकी टाटिन्हके परदा हैं।
राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है॥

इसके मस्तकपर वरदायिनी गङ्गाजी विराजती हैं, स्वयं भी वरदायक अथवा श्रेष्ठ दानी है। बरदा (बैल) पर ही चढ़ा हुआ है और इसकी गृहिणी भी वरदायिनी पार्वती हैं। इसके घरमें धतूरा और भस्मका ही ढेर है तथा इसका निवासस्थान वहाँ है, जहाँ सब लोग मुर्दोंको ले जाकर जलाते हैं। यह सर्प और कपाल धारण करनेवाला बड़ा कौतुकी है; इसके घरमें चारों ओर भाँगकी टट्टियोंके परदे लगे हुए हैं। यह आधी दमड़ीकी हैसियतवाले कंगालोंके शिरोमणिको भी लोकपाल बना देता है॥ १५५॥

दानि जो चारि पदारथको, त्रिपुरारि, तिहूँ पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो, भले भायको भूखो, भलोई कियो सुमिरें तुलसीको॥
ता बिनु आसको दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालचु जीको।
साधो कहा करि साधन तैं, जो पै राधो नहीं पति पारबतीको॥

जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंका दाता है, त्रिपुरासुरका वध करनेवाला और तीनों लोकोंमें सबका सिरमौर बना हुआ है। जो बड़ा भोला है, केवल शुद्ध भावका भूखा है तथा स्मरण करनेपर जिसने तुलसीदासका भी भला ही किया है, उसको छोड़कर तू विषयोंकी आशाका दास बना हुआ है, किंतु तुम्हारे जीका तुच्छ लोभ कभी नष्ट नहीं हुआ, [तुलसीदास कहते हैं—] यदि तूने पार्वतीपति भगवान् शंकरकी आराधना नहीं की तो बहुत-से साधन करके भी क्या फल पाया?॥ १५६॥

जात जरे सब लोक बिलोकि तिलोचन सो बिषु लोकि लियो है।
पान कियो बिषु, भूषन भो, करुनाबरुनालय साइँ-हियो है॥
मेरोइ फोरिबे जोगु कपारु, किधौं कछु काहूँ लखाइ दियो है।
काहे न कान करौ बिनती तुलसी कलिकाल बेहाल कियो है॥

सम्पूर्ण लोक जले जा रहे हैं, यह देखकर त्रिनयन भगवान् शंकरने उस हालाहल विषको लपककर लिया और शीघ्रतासे पी लिया; इससे वह विष आपका आभूषण हो गया। हे स्वामी! आपका हृदय तो करुणाका समुद्र है। मालूम नहीं, मेरा भाग्य ही फोड़ने योग्य है अथवा आपहीको किसीने मेरा कोई दोष दिखा दिया है। हे शंकर! इस तुलसीको कलिकालने व्याकुल कर दिया है, आप इसकी प्रार्थनापर ध्यान क्यों नहीं देते?॥ १५७॥

खायो कालकूटु, भयो अजर अमर तनु,
भवनु मसानु, गथ गाठरी गरदकी।
डमरू कपालु कर, भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़ेकी रीझ बाहन बरदकी॥
तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरदकी।
अर्थ-धर्म-काम-मोच्छ बसत बिलोकनिमें,
कासी करामाति जोगी जागति मरदकी॥

(महादेवजीने) कालकूट विष खाया था, किंतु उनका शरीर अजर-अमर हो गया। अब श्मशान ही उनका निवासस्थान है और भस्मकी पोटली ही उनकी सम्पत्ति है। हाथमें डमरू और कपाल हैं। भयंकर सर्प ही उनके आभूषण हैं तथा उस अत्यन्त बावले महादेवकी बैलकी सवारीपर ही बड़ी रीझ (रुचि) है। तुलसीदासजी कहते हैं—उसके अति विशाल गौर शरीरपर विभूति सुशोभित है। सो ऐसी जान पड़ती है, मानो हिमालय पर्वतपर शरत्कालीन चन्द्रिका छिटक रही हो। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये तो उसकी दृष्टिमें ही विराजते हैं, उस मर्द योगीकी करामात काशीमें प्रकट हो रही है॥ १५८॥

पिंगल जटाकलापु माथेपै पुनीत आपु,
पावक नैना प्रताप भ्रूपर बरत है।
लोयन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
कंठ कालकूटु, ब्याल-भूषन धरत है॥
सुंदर दिगंबर, बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरें काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात रीझि, जात पात आकहीकें
भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥

उनका जटाजूट पिंगलवर्ण है, मस्तकपर परमपवित्र गङ्गाजल सुशोभित है तथा उनके नेत्रस्थित अग्निकी ज्योति उनकी भौंहोंपर दमकती है। उनके नेत्र विशाल और अरुणवर्ण हैं, ललाटपर द्वितीयाका चन्द्र शोभायमान है, गलेमें कालकूट विष है तथा वे सर्पोंके आभूषण धारण किये हुए हैं। उनका अति सुन्दर दिगम्बर वेष है और वे शरीरमें भस्म रमाये रहते हैं, भाँग खाते हैं तथा सींगका मनोहर शब्द करके कालरूपी कण्टकको निवृत्त कर देते हैं। जिस समय वे भोलानाथ योगी बेतरह प्रसन्न होते हैं, उस समय वे देते-देते अघाते नहीं और स्वयं आकके पत्तोंसे ही रीझ जाते हैं॥ १५९॥

देत संपदासमेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति-भाँग, बृषभ बहनु है।
नाम बामदेव दाहिनो सदा असंग रंग
अर्द्ध अंग अंगना, अनंगको महनु है॥
तुलसी महेसको प्रभाव भावहीं सुगम
निगम-अगमहूको जानिबो गहनु है।
भेष तौ भिखारिको भयंकररूप संकर
दयाल दीनबंधु दानि दारिददहनु है॥

जो माँगनेवालोंको सम्पत्तिसहित श्रीसम्पन्न (अथवा लक्ष्मीजीका भवन अर्थात् वैकुण्ठ) भवन देते हैं, किंतु जिनके घरमें केवल विभूति (भस्म) और भाँग है और चढ़नेके लिये जिनके बैलकी सवारी है, जिनका नाम तो 'वामदेव' है, किंतु जो सर्वदा सबको दाहिने (अनुकूल) रहते हैं, सदा असंग (निर्लेपता) का ठाट रहनेपर भी जिनके अर्धाङ्गमें पार्वतीजी रहती हैं तथा जो कामदेवका मथन करनेवाले हैं; तुलसीदासजी कहते हैं—उन श्रीमहादेवजीका प्रभाव भाव (भक्ति) से ही सुलभ है, नहीं तो वेद-शास्त्रके लिये भी उसका जानना अत्यन्त कठिन है। उनका वेष तो भिक्षुकोंका-सा है तथा रूप भी बड़ा भयानक है, किंतु वे शंकर (कल्याण करनेवाले), दीनबन्धु, दयामय, दानिशिरोमणि तथा दारिद्र्यका नाश करनेवाले हैं॥ १६०॥

चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मागनेको
देबोई पै जानिये, सुभावसिद्ध बानि सो।
बारि बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिये तौ
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो॥

तुलसी भरोसो न भवेस भोरानाथ को तौ
कोटिक कलेस करौ, मरौ छार छानि सो।
दारिद दमन दुख-दोष दाह दावानल
दुनी न दयाल दूजो दानि सूलपानि-सो॥

मदनमथन भगवान् शंकर माँगनेवालेसे [षोडशोपचारमेंसे] किसी भी अङ्गकी इच्छा नहीं करते; वे तो केवल देना ही जानते हैं, यह उनकी स्वभावसिद्ध आदत है, यदि उनपर पानीकी चार बूँदें भी डाल दी जायँ तो उसे ही वे सच्ची सेवा मान लेते हैं और उसके बदलेमें चारों फल दे डालते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें विश्वेश्वर भगवान् भोलानाथका भरोसा नहीं है तो भले ही करोड़ों क्लेश करो और खाक छान-छानकर मर जाओ [पल्ले कुछ पड़नेका नहीं], संसारमें शूलपाणि श्रीमहादेवजीके समान दारिद्र्यको दूर करनेवाला तथा दुःख और दोषादिका दहन करनेके लिये दावानलरूप कोई दूसरा दयालु दानी नहीं है॥ १६१ ॥

काहेको अनेक देव सेवत जागै मसान,
खोवत अपान, सठ! होत हठि प्रेत रे।
काहेको उपाय कोटि करत, मरत धाय,
जाचत नरेस देस-देसके, अचेत रे॥
तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धनहीके हेत दान देत कुरुखेत रे।
पात द्वै धतूरेके दै, भोरें कै, भवेससों,
सुरेसहूकी संपदा सुभायसों न लेत रे॥

अरे, अनेक देवताओंकी उपासनामें लगा रहकर मशान क्यों जगाता है? अरे मूर्ख! इस प्रकार तू अपनी प्रतिष्ठा खोकर आग्रहपूर्वक प्रेत क्यों बनता है? अरे अज्ञानी! तू करोड़ों उपाय करके दौड़-दौड़कर क्यों मरता है तथा देश-देशके राजाओंसे क्यों याचना करता फिरता है? तुलसीदासजी कहते हैं—बिना विश्वासके ही तू प्रयागमें देहत्याग करता है तथा धनके लिये ही तू कुरुक्षेत्रमें दान देता है। [उससे भी तुझे क्या लाभ होगा?] अरे, भवनाथको धतूरेके दो पत्ते देकर और इस प्रकार उन्हें भुलावा देकर उनसे सहजहीमें इन्द्रकी सम्पत्ति क्यों नहीं ले लेता?॥ १६२ ॥

स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले, भले, भट,
धन-धाम-निकर करनिहूँ न पूजै क्वै।

बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ
बिनय, बिबेक, बिद्या सुभग सरीर ज्वै॥
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
जाको फल तुलसी सो सुनौ सावधान है।
जानें, बिनु जानें, कै रिसानें, केलि कबहुँक
सिवहि चढ़ाए ह्वैहैं बेलके पतौवा द्वै॥

जिसके यहाँ रथ, हाथी और घोड़ोंकी कतारें लगी हुई हैं, अच्छे-अच्छे योद्धा तथा धन-धामकी भी अधिकता है और जिसकी करनीको भी कोई नहीं पहुँच सकता; जिसकी स्त्री अत्यन्त विनीत, पुत्र बड़ा सदाचारी और सुन्दर तथा जिसे विनय, विवेक, विद्या और सुन्दर शरीर प्राप्त है। तुलसीदासजी कहते हैं— इस प्रकार उसे जो यहाँ ऐसा सुख प्राप्त है और परलोकमें—शिवलोकमें स्थान मिलता है, यह सब फल जिस कर्मका है, उसे सावधान होकर सुनो—उसने जानकर, बिना जाने, रूठकर अथवा खेलमें ही किसी समय श्रीमहादेवजीपर बेलके दो पत्ते चढ़ा दिये होंगे॥ १६३॥

रति-सी रवनि, सिंधुमेखला अवनि पति
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा-समाज देखि लाज सुरराजहूकें
सुख सब बिधि बिधि दीन्हे हैं सवाँरि कै॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथपद,
जाको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि कै।
आकके पतौआ चारि, फूल कै धतूरेके द्वै
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारिपर डारिकै॥

जिसके रतिके समान सुन्दरी स्त्री है, जो आसमुद्र भूमण्डलका अधिपति है, जिससे परास्त होकर अनेकों राजालोग हाथ जोड़े खड़े रहते हैं, जिसकी सम्पत्ति और साज-समाजको देखकर देवराज इन्द्रको भी लज्जा होती है; इस प्रकार जिसे विधाताने सभी प्रकारके सुख जुटाकर दिये हैं। जिसे इस लोकमें ऐसा सुख है, और परलोकमें इन्द्रपद प्राप्त होता है, उसे यह सब जिस कर्मका फल मिला है, उसे तुलसीदास विचारकर कहता है—उसने या तो आकके चार पत्ते अथवा धतूरेके दो फूल एक बार महादेवजीपर डाल दिये होंगे॥ १६४॥

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरेहीं
नाम रामहीके मागि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहूको कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं॥
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव! दीन द्वारें गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि,
कालकला कासीनाथ कहें निबरत हौं॥

हे श्रीमहादेवजी! मैं आपहीकी पुरीमें रहकर श्रीगङ्गाजीका सेवन करता हूँ तथा रामके नामपर टुकड़े माँगकर पेट भरता हूँ। यह तुलसी कुछ देने योग्य नहीं है, तो किसीका कुछ लेता भी नहीं, भलाई तो मेरे भाग्यमें ही नहीं लिखी, परंतु मैं कोई बुराई भी नहीं करता। इतनेपर भी यदि कोई व्यक्ति आपका भक्त कहलाकर भी मुझसे बलात्कार करता है तो उसका वह बलप्रयोग दीन होकर आपके द्वारपर निवेदन कर देता हूँ। हे काशीनाथ ! [मेरे प्रभु श्रीरघुनाथजीसे] उलाहना पाकर मुझे उलाहना मत देना [कि तुमने मुझे अपने कष्टकी सूचना क्यों नहीं दी] इसलिये मैं कालकी करतूत आपसे कहकर छुट्टी ले लेता हूँ* ॥ १६५ ॥

चेरो रामराइको, सुजस सुनि तेरो, हर!
पाइ तर आइ रह्यौं सुरसरितीर हौं।
बामदेव! रामको सुभाव-सील जानियत
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥
अधिभूत बेदन बिषम होत, भूतनाथ
तुलसी बिकल, पाहि! पचत कुपीर हौं।
मारिये तौ अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तौ कृपा करि निरुजसरीर हौं॥

हे शंकर! मैं महाराज रामका दास हूँ, आपका सुयश सुनकर आपके चरणोंमें श्रीगङ्गाजीके तटपर आ बसा हूँ। हे महादेवजी ! आप श्रीरघुनाथजीका शील-स्वभाव और हमारा स्नेह-सम्बन्ध तो जानते ही हैं; मैं श्रीरामचन्द्रजीसे ही डरता हूँ। हे भूतनाथ! मेरे इस आधिभौतिक शरीरमें बड़ी प्रबल पीड़ा हो रही है, इससे

* गोसाईंजीकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा देखकर काशीके बहुत-से विद्वानोंको सहन नहीं हुई।

तुलसीदास बहुत व्याकुल है; इस कुत्सित पीड़ासे मैं घुला जाता हूँ, आप रक्षा कीजिये। इससे तो यदि आप मार दें तो अनायास ही काशीवासका मुख्य फल प्राप्त हो जाय और यदि जिलाना चाहें तो कृपा करके मेरा शरीर नीरोग कर दीजिये* ॥ १६६ ॥

जीबेकी न लालसा, दयाल महादेव! मोहि,
मालुम है तोहि, मरिबेईको रहतु हौं।
कामरिपु! रामके गुलामनिको कामतरु!
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत-सो, कुसूत भयो तुलसीको,
भूतनाथ, पाहि! पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तौ जानकीरमन-जन जानि जियँ
मारिये तौ मागी मीचु सूधियै कहतु हौं॥

हे दयामय महादेवजी! मुझे जीवित रहनेकी इच्छा नहीं है। यह आप जानते ही हैं कि मैं मरनेके ही लिये (काशीपुरीमें) रहता हूँ। हे कामारि! आप भगवान् रामके दासोंके लिये कल्पवृक्षके समान हैं; मैं जगन्माता पार्वतीजीके सहित आपका आश्रय चाहता हूँ। (भैरवजीकी प्रेरणासे) यह रोग भूतकी तरह मेरे पीछे लग गया है, जिसके कारण इस तुलसीदासको बड़ा कष्ट हो रहा है; अतः हे भूतनाथ! आप रक्षा कीजिये, मैं आपके चरणकमल पकड़ता हूँ। यदि मुझे जिलाना है तो जानकीवल्लभका दास जानकर जिलाइये और यदि मारना है तो आपसे साफ-साफ कहता हूँ, मुझे मुँहमाँगी मौत दीजिये (अर्थात् मृत्यु तो मैं स्वयं भी माँगता हूँ; वह मुझे प्रसन्नतापूर्वक दीजिये) ॥ १६७ ॥

भूतभव! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो, समाज सिव आपु नीकें जानिये।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन, बसन, बास,
खान-पान, बलि-पूजा बिधि को बखानिये॥
रामके गुलामनिकी रीति, प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह, सबहीको सनमानिये।

वे लोग तरह-तरहसे उन्हें कष्ट पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे। उस समय गोसाईंजीने यह कवित्त रचकर श्रीमहादेवजीके यहाँ फरियाद की।

* एक बार भैरवजीने गोसाईंजीकी भुजामें दर्द उत्पन्न कर दिया था। उस समय उन्होंने इन तीन कवित्तोंद्वारा श्रीविश्वनाथकी प्रार्थना की थी।

तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथहीके
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये॥

हे पञ्चमहाभूतोंके कारणस्वरूप शिवजी! आपको भूत, प्रेत एवं पिशाच प्रिय हैं, आप अपने समाजको अच्छी तरह जानते हैं। उनके वेष, वाहन, आभूषण, वस्त्र, निवासस्थान, खान-पान, बलि और पूजाविधि अनेक प्रकारके हैं, उनका कौन वर्णन कर सकता है? रामके दासोंका व्यवहार और प्रेम तो सीधा-सादा होता है। वे सभीसे प्रेम रखते हैं और सभीका सम्मान करते हैं। [अतः मेरे व्यवहारसे मेरा सम्मान बढ़ा देखकर जो भैरवजीने मुझे दण्ड दिया है, उसमें मेरा क्या अपराध है।] अब तुलसीदासकी बात तो श्रीभूतनाथके सुधारनेसे ही सुधरेगी—मेरे माता-पिता और गुरु तो श्रीशंकर और पार्वतीजी ही हैं॥ १६८॥

काशीमें महामारी

गौरीनाथ, भोरानाथ, भवत भवानीनाथ!
बिस्वनाथपुर फिरी आन कलिकालकी।
संकर-से नर, गिरिजा-सी नारीं कासीबासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपालकी॥
छमुख-गनेस तें महेसके पियारे लोग
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहालकी।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भालकी॥

हे पार्वतीपते! हे भोलानाथ! हे भवानीपते! इस विश्वनाथपुरी काशीमें आज कलिकालकी दुहाई फिरी हुई है। काशीमें रहनेवाले पुरुष शंकरके समान हैं और स्त्रियाँ पार्वतीजीके सदृश हैं—ऐसा वेदने कहा है और इसपर कृपालु चन्द्रशेखरकी भी सही है, किंतु हे महेश! आज [कलिके प्रतापसे] वे लोग जो शंकरको षडानन और गणेशसे भी प्यारे हैं, बड़े व्याकुल दीख पड़ते हैं, सारी काशीपुरीको [इस कलिने] बेहाल कर दिया है। यह कलिरूप निष्ठुर किरात आपकी पुरीरूप कल्पलताको खेलहीमें काट रहा है। इसे अपने मस्तकका नेत्र खोलकर देखिये॥ १६९॥

ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा-सी जहाँ,
लोक-बेदहूँ बिदित महिमा ठहरकी।

भट रुद्रगन, पूत गनपति-सेनापति,
कलिकालकी कुचाल काहू तौ न हरकी॥
बीसीं बिस्वनाथकी बिषाद बड़ो बारानसीं,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहरकी।
कैसे कहै तुलसी बृषासुरके बरदानि
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहरकी॥

जहाँके महादेवजी-जैसे स्वामी और पार्वतीजी-जैसी स्वामिनी हैं तथा लोक और वेदमें भी जिस स्थानकी महिमा प्रसिद्ध है, जहाँ रुद्रके गण ही योद्धा हैं और श्रीषडानन एवं गणेशजी सेनापति हैं, वहाँ भी कलिकी कुचालको किसीने नहीं रोका। इस विश्वनाथकी बीसीमें उस वाराणसीमें बड़ा भारी विषाद छाया हुआ है, शंकरके नगरकी ऐसी दुर्दशा है कि पूछो मत। वे भस्मासुरको वर देनेवाले ठहरे, उनका अमृत छोड़कर विष पीनेका स्वभाव जानकर भी तुलसीदास उनके विषयमें किस प्रकार कोई बात कह सकता है? [अर्थात् उनका तो स्वभाव ही उलटा है, इसलिये नगरकी चिन्ता न कर यदि वे कलियुगको पाले हुए हैं तो कोई आश्चर्य नहीं।] ॥ १७० ॥

लोक-बेदहूँ बिदित बारानसीकी बड़ाई
बासी नरनारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप-से अमित अनूप हैं॥
तहाँऊँ कुचालि कलिकालकी कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़ इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल-पल
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं॥

काशीका महत्त्व लोक और वेद दोनोंमें प्रसिद्ध है। यहाँके निवासी श्रीशंकर और पार्वतीरूप हैं। कालभैरव-जैसे तो यहाँके कोतवाल हैं, दण्डपाणि भैरव-जैसे दण्ड देनेवाले जज हैं तथा गणेशजी-जैसे अनेकों अनुपम सभासद् हैं। किंतु कुचालि कलियुगने वहाँ भी अपनी कुचेष्टा नहीं छोड़ी। अथवा वह मूर्ख जानता नहीं कि यहाँके राजा साक्षात् भूतनाथ हैं। [आजकल सब बातें उलटी देखनेमें आती हैं] दुष्ट लोग तो खूब फलते, फूलते और फैलते हैं तथा साधुजन पल-पलमें दुःख उठाते हैं, जैसे कहावत है—घी तो खाय दीपमालिका और दूसरे दिन ठोंका जाता है सूप॥ १७१ ॥

पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ-परमारथको
जानि आपु आपने सुपास बास दियो है।
नीच नर-नारि न सँभारि सके आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है॥
बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोसमें भरोसो एक आसुतोस कहि जात
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है॥

पाँच कोसके बीचमें बसा हुआ काशीक्षेत्र पुण्यका खजाना और स्वार्थ-परमार्थ दोनोंका साधक है—यह जानकर आपने यहाँके निवासियोंको अपने पार्श्वमें बसाया है, किंतु नीच स्त्री-पुरुष इस आदरको सह नहीं सके; इसलिये उन्होंने जो कर्म विचारकर नहीं किये, उन्हींका फल वे कायरलोग भोगते हैं। किंतु यह कलिकाल आपसे भय नहीं मानता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। देखिये, सुदर्शन चक्रने भगवान् कृष्णके बिना कहे ही [मिथ्यावासुदेव पौण्ड्रकका वध करनेके अनन्तर] काशीको जला दिया था [उसमें यद्यपि श्रीकृष्णका कोई अपराध नहीं था तो भी] आपके प्रेमकी हानि जानकर उनके चित्तमें बड़ा ही संकोच है, [फिर बेचारा कलि तो किस खेतकी मूली है।] दैवका कोप होनेपर तो एकमात्र आप आशुतोषका ही भरोसा कहा जाता है, क्योंकि लोकोंको व्याकुल देखकर आपहीने तो कालकूट विष पिया था॥ १७२॥

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर
तेरे हीं प्रसाद जग, अग-जग-पालिके।
तोहिमें बिकास बिस्व, तोहिमें बिलास सब,
तोहिमें समात, मातु भूमिधरबालिके॥
दीजै अवलंब, जगदंब! न बिलंब कीजै,
करुनातरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी, मुनि-मानस-मरालिके॥

हे चराचरका पालन करनेवाली माता पार्वती! तेरी ही कृपासे ब्रह्माजी सृष्टिकी रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और महादेवजी संहार करते हैं। सारे विश्वका तेरेहीमें विकास होता है, तेरेहीमें उसकी स्थिति है और फिर तेरेहीमें उसका लय होता है। हे जगज्जननी! तुम कृपा-तरङ्गावलिसे विभूषित करुणामयी सरिता हो। तुम देरी न करके मुझे आश्रय दो। हे मुनिमन-मानस-मरालिके! कुपित होनेपर तुम महामारी हो जाती हो और प्रसन्न होनेपर तुम्हीं संसारकी साक्षात् जननीस्वरूपा हो; अतः अब तुम कृपादृष्टिसे हम दुःखियोंकी ओर देखो॥ १७३॥

निपट बसेरे अघ-औगुन घनेरे, नर-
नारिऊ अनेरे जगदंब! चेरी-चेरे हैं।
दारिद-दुखारी देबि भूसुर भिखारी-भीरु
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं॥
लोकरीति राखी राम, साखी बामदेव जानि
जनकी बिनति मानि मातु! कहि मेरे हैं।
महामारी महेसानि! महिमाकी खानि, मोद-
मंगलकी रासि, दास कासीबासी तेरे हैं॥

हे जगन्मातः! यहाँके अन्यायी नर-नारी यद्यपि पाप और अवगुणोंके पूरे निवासस्थान हैं तो भी वे हैं तेरे ही दास-दासी। हे देवि ! वे दरिद्रताके कारण अत्यन्त दुःखी हैं; ब्राह्मणलोग भिखमंगे और बड़े डरपोक हो गये हैं; इसलिये लोभ, मोह, काम और क्रोधरूप कलिकलुषने उन्हें घेर लिया है। देख, भगवान् रामने भी [अपनी प्रजाके गुण-दोषोंकी ओर दृष्टि न देकर] लोक-मर्यादाकी रक्षा की थी, इसमें स्वयं श्रीमहादेवजी साक्षी हैं—ऐसा जानकर हे मातः! इस दासकी प्रार्थनापर ध्यान देकर एक बार ऐसा कह दे कि 'ये सब मेरे हैं।' हे महामारी! हे महिमाकी खानि एवं मङ्गल और आनन्दकी राशि महेश्वरि! ये काशीवासी तेरे ही दास हैं॥ १७४॥

लोगनिकें पाप कैधौं, सिद्ध-सुर-साप कैधौं,
कालकें प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है।

ऊँचे, नीचे, बीचके, धनिक, रंक, राजा, राय
हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है॥
देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान!
जसरासि जहाँ-तहाँ तैंहीं लूटि लई है॥

न जाने लोगोंका पाप है अथवा सिद्ध और देवताओंका शाप है या समयका प्रताप है, जिसके कारण काशी तीनों तापोंसे तप रही है। इस समय ऊँच, नीच, मध्यम श्रेणीके लोग, धनी, निर्धन, राजा और राव सभीने हठपूर्वक, खुल्लम-खुल्ला सब कुछ देखकर भी पीठ फेर ली है। देवताओंकी प्रार्थना की और महामारियोंको भी हाथ जोड़े; परंतु इन्होंने भोलानाथको सीधा-सादा जानकर मनमानी ठान रखी है। हे करुणानिधान, बलवान् वीर हनुमान्‌जी! जहाँ-तहाँ आपहीने यशकी राशि लूटी है [अतः आप ही यहाँके लोगोंका भी दुःख दूर करके यशस्वी होइये]॥ १७५॥

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर
बिकल, सकल, महामारी माजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है॥
देव न दयाल, महिपाल न कृपालचित,
बारानसीं बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज! पाहि कपिराज रामदूत!
रामहूकी बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥

इस शिवपुरीरूप सरोवरके नर-नारीरूप समस्त जलचर बड़े व्याकुल हैं, यह महामारी उनके लिये माजा* हो रही है। वे उछलते हैं, तैरते हैं, घबराकर भागते हैं और हाय-हाय करके मर जाते हैं। इस प्रकार सारा जल-थल मृत्युमय हो रहा है। इस समय देवतालोग दया नहीं करते तथा राजालोग

* जलचरोंमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

भी कृपालुचित्त नहीं हैं। अतः वाराणसीमें नित्य-नवीन अन्याय बढ़ रहा है। हे रघुराज ! रक्षा कीजिये। हे वानरराज हनुमान्‌जी ! रक्षा कीजिये; भगवान् रामकी बात बिगड़नेपर भी आपहीने उसे सँभाला था [अतः यहाँ भी आप ही कृपा कीजिये] ॥ १७६ ॥

एक तौ कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें
कोढ़मेंकी खाजु-सी सनीचरी है मीनकी।
बेद-धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीनकी॥
दूबरेको दूसरो न द्वार, राम दयाधाम!
रावरीऐ गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज! आजु जौं न देत दादि दीनकी॥

एक तो सारे दुःखोंका मूलभूत यह भयंकर कलिकाल और उसमें भी कोढ़में खाजके समान मीनराशिपर शनैश्चरकी स्थिति है। इसीसे इस समय वेद-धर्म तो लुप्त हो गये हैं, लुटेरे ही राजा हो गये तथा बढ़े हुए पापकी गति देखकर साधुजन दुःखी हैं। हे दयाधाम भगवान् राम! दुर्बल पुरुषोंके लिये कोई दूसरा द्वार नहीं है, बलवैभवशून्य पुरुषोंको तो एकमात्र आपकी ही गति है। हे महाराज ! यदि इस समय आपने इन दीनोंकी सहायता न की तो आपके उस (सर्वोपरि) विराजमान विरदको लज्जित होना पड़ेगा॥ १७७ ॥

विविध

रामनाम मातु-पितु, स्वामि समरथ, हितु,
आस रामनामकी, भरोसो रामनामको।
प्रेम रामनामहीसों, नेम रामनामहीको,
जानौं नाम मरम पद दाहिनो न बामको॥
स्वारथ सकल परमारथको रामनाम,
रामनाम हीन तुलसी न काहू कामको।
रामकी सपथ, सरबस मेरें रामनाम,
कामधेनु-कामतरु मोसे छीन छामको॥

रामनाम ही मेरा माता-पिता है, वही मेरा समर्थ स्वामी और हितकारी है, मुझे रामनामसे ही सब प्रकारकी आशा है और रामनामका ही भरोसा है। रामनामसे ही मेरा प्रेम है और रामनाम जपनेका ही नियम है। [रामनामके अतिरिक्त] और किसी अनुकूल-प्रतिकूल मार्गका मुझे कोई भेद ज्ञात नहीं है। रामनाम ही मेरे सारे स्वार्थ और परमार्थको सिद्ध करनेवाला है, रामनामके बिना तुलसीदास किसी कामका नहीं है। मैं रामकी शपथ करके कहता हूँ—रामनाम ही मेरा सर्वस्व है और वही मेरे-जैसे दीन-दुर्बलके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षके समान है॥ १७८॥

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिककै धन लीयो।
संकरकोपसों पापको दाम परिच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासीमें कंटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालि परों कि नरों जड जाहिंगे चाटि दिवारीको दीयो॥

जिन लोगोंने पथिकोंको लूटकर अथवा ब्राह्मणोंको मार (सता) कर करोड़ों कुमार्गोंसे धन एकत्रित किया है, उनका वह धन भगवान् शंकरके कोपसे हृदयको जलाकर जायगा—यह बात खूब परीक्षा की हुई है। काशीमें जितने कण्टक (पापी) हुए हैं, वे अपनी करनीका भली प्रकार फल भोगकर नष्ट हो गये हैं। ये सब भी आजकल, परसों अथवा नरसों दिवालीका दीया चाटकर जायँगे ही [कहते हैं, दीपावलीका दीया चाटकर सर्प चले जाते हैं, फिर वे दिखायी नहीं देते। इसी प्रकार ये पापीलोग भी ऐसे नष्ट होंगे कि इनका कोई पता नहीं चलेगा]॥ १७९॥

कुंकुम-रंग सुअंग जितो, मुखचंदसों चंदसों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच-बिषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनिबेष, कि मंजुल मूरति मोदभरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच-बिमोचन छेमकरी है॥

जिसने अपने शरीरकी आभासे कुंकुमको जीत लिया है तथा जिसका मुखचन्द्र चन्द्रमासे होड़ बदता है, जिसके बोलनेमें सब प्रकारकी समृद्धि चूने लगती है और जो देखते ही सब प्रकारकी चिन्ता और खेदको हर लेती है,

यह पक्षिणीके वेषमें साक्षात् गौरी है या गङ्गा? अथवा आनन्दसे परिपूर्ण किसी अन्य देवीकी मनोहर मूर्ति है। इस क्षेमकरी (लाल रंगकी चील्ह) को कहीं जाते समय प्रेमपूर्वक देखा जाय तो यह सब प्रकारके शोकोंकी निवृत्ति करनेवाली होती है॥ १८०॥

मंगलकी रासि, परमारथकी खानि जानि
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलयहूँ काल राखी सूलपानि सूलपर,
मीचुबस नीच सोऊ चाहत खसाई है॥
छाडि छितिपाल जो परीछित भए कृपाल,
भलो कियो खलको, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!
कासी-कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥

विधाताने काशीको मङ्गलकी राशि और परमार्थकी खानि जानकर रचा है और श्रीविष्णुभगवान्ने उसे बसाया है। प्रलयकालमें भी भगवान् शंकरने उसे अपने त्रिशूलपर रखकर बचाया था, उसीको यह मृत्युके वशीभूत हुआ नीच कलि गिराना चाहता है। महाराज परीक्षित्ने इसे छोड़कर इसपर कृपा की और इस दुष्टका भला किया; उस उपकारको इसने भुला ही दिया। हे हनुमान्जी! रक्षा कीजिये; हे करुणानिधान भगवान् राम! बचाइये, यह कलिरूप कसाई काशीरूप कामधेनुको मारे डालता है॥ १८१॥

बिरची बिरंचिकी, बसति बिस्वनाथकी जो,
प्रानहू तें प्यारी पुरी केसव कृपालकी।
जोतिरूप लिंगमई अगनित लिंगमयी
मोच्छ बितरनि, बिदरनि जगजालकी॥
देबी-देव-देवसरि-सिद्ध-मुनिबर-बास
लोपति-बिलोकत कुलिपि भोंडे भालकी।
हा हा करै तुलसी, दयानिधान राम! ऐसी
कासीकी कदर्थना कराल कलिकालकी॥

जो ब्रह्माजीकी रची हुई है और स्वयं विश्वनाथकी राजधानी है और जो कृपामय विष्णुभगवान्‌को प्राणोंसे भी प्यारी है, वह ज्योतिर्लिङ्गमयी और अगणित लिङ्गमयी पुरी मोक्षदान करनेवाली तथा जगज्जालको नष्ट करनेवाली है। वह देवी, देवता, सुरसरि, सिद्धजन और मुनिवरोंकी निवासभूमि है और दर्शनमात्रसे ही अभागोंके ललाटपर लिखी हुई दुर्भाग्यकी रेखाको मिटा देती है। ऐसी काशीकी भी इस कलिकालने दुर्दशा कर रखी है, जिसे देखकर, हे दयानिधान श्रीराम! यह तुलसीदास हाहा खाता है [आप कृपाकर इसकी रक्षा कीजिये]॥ १८२॥

आश्रम-बरन कलि बिबस बिकल भए
निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
संकर सरोष महामारिहीतें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दारदी॥
नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहूँ देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी।
तुलसी सभीतपाल सुमिरें कृपालराम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी*॥

आश्रम और वर्ण कलिके प्रभावसे विकलाङ्ग हो गये और सबने अपनी-अपनी मर्यादाको भारस्वरूप समझकर त्याग दिया। शिवजीका कोप तो महामारीसे ही प्रकट है, स्वामीके कुपित होनेके कारण ही संसारका दारिद्र्य दिनों-दिन बढ़ता जाता है। स्त्री-पुरुष सब आर्त होकर पुकारते हैं, किंतु उनकी पुकार कोई नहीं सुनता। [मालूम होता है] किन्हीं देवताओंने मिलकर मूठ चला दी थी (अभिचारका प्रयोग किया था), किंतु भयभीतोंकी रक्षा करनेवाले कृपालु श्रीरामको स्मरण करते ही उन्होंने अपनी करुणाकी प्रशंसा करके उसे समयपर अपना काम करनेका संकेत कर दिया [जिससे वह बीमारी बात-की-बातमें चली गयी]॥ १८३॥

इति उत्तरकाण्ड

---

* कुछ प्रतियोंमें १७७ छन्द ही मिलते हैं। काशी-नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रतिमें १८३ छन्द हैं। अतः १८३ छन्द रखे गये हैं।

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५ गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस © (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स २३३६९९७
website:www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org

दिल्ली-११०००६ २६०९, नयी सड़क © (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५९१४०

कोलकाता-७००००७ गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड © (०३३) २२६८६८९४;
e-mail:gobindbhawan@gitapress.org फैक्स २२६८०२५१

मुम्बई-४००००२ २८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)
मरीन लाईन्स स्टेशनके पास © (०२२) २२०३०७१७

कानपुर-२०८००१ २४/५५, बिरहाना रोड © (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१

पटना-८००००४ अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने © (०६१२) २३००३२५

राँची-८३४००१ कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर © (०६५१) २२१०६८५

सूरत-३९५००१ वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड
e-mail: suratdukan@gitapress.org © (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५

इन्दौर-४५२००१ जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग © (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७

जलगाँव-४२५००१ ७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास © (०२५७) २२२६३९३; फैक्स २२२०३२०

हैदराबाद-५०००९५ ४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार © (०४०) २४७५८३११

नागपुर-४४०००२ श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड © (०७१२) २७३४३५४

कटक-७५३००९ भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी © (०६७१) २३३५४८१

रायपुर-४९२००९ मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक © (०७७१) ४०३४४३०

वाराणसी-२२१००१ ५९/९, नीचीबाग © (०५४२) २४१३५५१

हरिद्वार-२४९४०१ सब्जीमण्डी, मोतीबाजार © (०१३३४) २२२६५७

ऋषिकेश-२४९३०४ गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
e-mail:gitabhawan@gitapress.org © (०१३५) २४३०१२२, २४३२७९२

कोयम्बटूर-६४१०१८ गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स © (०४२२) ३२०२५२१

बेंगलोर-५६००२७ १५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड © (०८०) २२९५५१९०, ३२४०८१२४

स्टेशन-स्टाल—

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० ५-६); **नयी दिल्ली** (नं० १६); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० ४-५); **कोटा** [राजस्थान] (नं० १); **बीकानेर** (नं० १); **गोरखपुर** (नं० १); **कानपुर** (नं० १); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० ४-५); **मुगलसराय** (नं० ३-४); **हरिद्वार** (नं० १); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० १); **धनबाद** (नं० २-३); **मुजफ्फरपुर** (नं० १); **समस्तीपुर** (नं० २); **हावड़ा** (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० १); **सियालदा मेन** (नं० ८); **आसनसोल** (नं० ५); **कटक** (नं० १); **भुवनेश्वर** (नं० १); **अहमदाबाद** (नं० २-३); **राजकोट** (नं० १); **जामनगर** (नं० १); **भरूच** (नं० ४-५); **इन्दौर** (नं० ५); **वडोदरा** (नं० ४-५); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० १); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० १); **गुवाहाटी** (नं० १); **खड़गपुर** (नं० १-२); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० १); **बेंगलोर** (नं० १); **यशवन्तपुर** (नं० ६); **हुबली** (नं० १-२); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० १) एवं **अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।**

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू- ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**- मुनिकी रेती, **तिरुपति**- शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, **बेरहामपुर**- म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, शॉप नं० ५७—६०, प्रथम तल, **गुजरात**- सन्तराम मन्दिर, नडीयाड।

Code 108